राष्ट्र के वैश्य रत्न

भाग-1

122 A

सुबेसिंह गुप्ता

राष्ट्र के वैश्य रत्न

राष्ट्र के वैश्य रत्न

भाग -1

लेखक :

सुबे सिंह गुप्ता

प्रकाशक :

पंचमधाम प्रकाशन ट्रस्ट

जी पी-32, मौर्य एन्कलेव

पीतमपुरा, दिल्ली-110034

दूरभाष : 27323078

मोबाइल : 9868407669

राष्ट्र के वैश्य रत्न

मूल्य : 100/-

सुबे सिंह गुप्ता

© सर्वाधिकार सुरक्षित
भारत में सन् 2008 में प्रकाशित

पंचमधाम प्रकाशन ट्रस्ट
जी पी-32, मौर्य एन्कलेव
पीतमपुरा, दिल्ली-110088
दूरभाष : 23323078

शब्द सज्जा : **पवनदीप प्रिन्टर्स**
21/33, मास्टर लक्ष्मी नारायण मार्ग, शक्ति नगर, दिल्ली-7
दूरभाष : 23842140

राष्ट्र के वैश्य रत्न

मूल्य : 100/-

सुबे सिंह गुप्ता

© सर्वाधिकार सुरक्षित
भारत में सन् 2008 में प्रकाशित

पंचमधाम प्रकाशन ट्रस्ट
जी पी-32, मौर्य एन्कलेव
पीतमपुरा, दिल्ली-110088
दूरभाष : 23323078

शब्द सज्जा : पवनदीप प्रिन्टर्स
21/33, मास्टर लक्ष्मी नारायण मार्ग, शक्ति नगर, दिल्ली-7
दूरभाष : 23842140

भूमिका

यह 2008 का वर्ष इस लेखक के जीवन में विपत्तियों का और संघर्षपूर्ण रहा। पत्नी की जनवरी में शल्यक्रिया हुई थी उसके पश्चात् वह स्वस्थ्य नहीं हो पाई हैं। उन परिस्थितियों में इस पुस्तक का संस्करण पाठकों के हाथों में है यह सभी उनके प्रेम और सहयोग के कारण सम्भव हो सका। सहयोग! यह प्राकृतिक सत्य है कि लेखनी वाला आर्थिक रूप से कमजोर होता है। इसलिए यह पुस्तक भी समाज के व्यक्तियों द्वारा विज्ञापन देने पर प्रकाशित हो सकी है। वे सभी भाई धन्यवाद के पात्र हैं उनका आभार व्यक्त करना भी आवश्यक है। मेरी लेखनी 1998 में चलनी आरम्भ हुई थी। पहली दो पुस्तकों का प्रकाशन वर्ष 2005 में हुआ था। इस अवधि में इतना कुछ लिखा हुआ उपलब्ध है कि अगले पाँच वर्षों तक कुछ भी नहीं लिखा जाये तो भी प्रतिवर्ष एक पुस्तक प्रकाशित करके पाठकों को उपहार में दी जा सकती है। इस पुस्तक के शीर्षक से ही आपको ज्ञात हो गया होगा कि इसके अन्य भाग प्रकाशित किये जायेंगे।

आदरणीय पाठकों! आपको ज्ञात होगा कि इस पुस्तक में दिये गये वैश्य-अग्रवाल विभूतियों के जीवन-परिचयों के अतिरिक्त इस समाज से सम्बन्धित प्रश्नों, समस्याओं और व्यवहारों पर कुछ आलोचनात्मक लेखों का भी सर्जन किया है जिनको कई सामाजिक पत्र और पत्रिकाओं ने प्रकाशित भी किया है। उन लेखों के साथ वैश्य-अग्रवाल समाज के प्रबुद्ध लेखकों और सम्पादकों के लेखों को शामिल करके एक नई-तरह की पुस्तक का अगले वर्ष प्रकाशित करवाने का विचार है। आप सभी इस बात से सहमत होंगे कि आलोचना किसी भी समाज, व्यक्ति, संस्था और यहाँ तक कि स्थानीय और राष्ट्रीय सरकारों के लिए एक दर्पण का काम करती है। कल्पना कीजिए कि यदि कोई दिन में एक बार दर्पण में नहीं झांके तो उसको कैसा लगेगा। यह सभी के लिए आदत बन गई है। जिसको सभी निबाहते हैं चाहे उसका चेहरा कैसा भी और किसी भी प्रकार का हो।

आपको इस पुस्तक को देखकर एक परिवर्तन देखने को मिलेगा। पूर्व में पुस्तक की पाण्डुलिपि किसी अनुभवी लेखक के द्वारा पूर्णरूप से अध्ययन करने के पश्चात् उनके ''दो शब्द'' और 'प्रस्तावना' के साथ प्रकाशित होती थी। इस बार जब पांडुलिपि ऐसे लेखक के पास भेजी गई तो उन्होंने टेलीफोन पर बताया कि अब उसको उसे पढ़ लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। आपका लेखन समय के साथ बहुत ही सुधर गया है और उसमें एक अनुभवी लेखक की भांति निखार आ गया है। मैं उस लेखक का बहुत आदर करता हूँ और उनकी बात को अक्षरत: स्वीकार भी करता हूँ। जब उन्होंने इस प्रकार की बात कही तो मुझ में उत्साह और आत्म विश्वास जागृत हुआ। इसलिए पाठकों से नम्र निवेदन है कि वे इस परिस्थिति पर विचार करके, जहाँ कहीं कोई त्रुटि दिखाई दे उसको नजर अंदाज कर दें।

वैश्य-अग्रवाल समाज जिसको मैं असीम प्यार और आदर करता हूँ उसे इस पुस्तक के रूप में छटा उपहार है। समाज के प्रबुद्ध समाज को उनमें दी सामग्री बहुत पसंद आई यह बहुत संतोष का विषय हैं। उन पुस्तकों के लगभग सभी अध्याय ''मेरी दिल्ली'' समाचार पत्र के साथ अन्य सामाजिक पत्रिकाओं में प्रकाशित किये गये जिनके माध्यम से पाठकों को सुगमता से उपलब्ध हो सकें। यह उनका बड़ा ही सराहनीय काम था जिसके लिए आभार व्यक्त करना आवश्यक है।

अन्त में पुन: निवेदन है कि इस पुस्तक में ली गई पठनीय सामग्री विभिन्न उपलब्ध साहित्य से ली गई है। इतिहास के तथ्यों में परिवर्तन नहीं किया जा सकता केवल शब्दों और वाक्यों को पाठकों की रूचि को ध्यान में रखकर परिवर्तित किया जाता है। इसलिए जहाँ कहीं त्रुटि हो उसके लिए मुझे क्षमा कर दें।

सूबे सिंह गुप्ता

15 सितम्बर 2008

विषय सूची

1.	अग्रभागवत की संक्षिप्त कथा	9
2.	भारत रत्न–डॉ. भगवान दास	19
3.	साहित्य सृष्टा एवं कला मर्मज्ञ–अग्रज राय कृष्णदास	25
5.	कविवर–जय शंकर प्रसाद	33
6.	पताका रक्षा प्रेरक–श्यामलाल गुप्ता	41
7.	साहित्यकार–बाबू गुलाब राय	49
8.	कर्मयोगी–सेठ घनश्याम दास बिड़ला	57
9.	परोपकारी–सेठ रामकृष्ण डालमिया	67
10.	रायबहादुर लाला रामरूप	77
11.	प्रेरक पुरुषार्थी–बद्री प्रसाद अग्रवाल	83

आपको इस पुस्तक को देखकर एक परिवर्तन देखने को मिलेगा। पूर्व में पुस्तक की पाण्डुलिपि किसी अनुभवी लेखक के द्वारा पूर्णरूप से अध्ययन करने के पश्चात् उनके ''दो शब्द'' और 'प्रस्तावना' के साथ प्रकाशित होती थी। इस बार जब पांडुलिपि ऐसे लेखक के पास भेजी गई तो उन्होंने टेलीफोन पर बताया कि अब उसको उसे पढ़ लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। आपका लेखन समय के साथ बहुत ही सुधर गया है और उसमें एक अनुभवी लेखक की भांति निखार आ गया है। मैं उस लेखक का बहुत आदर करता हूँ और उनकी बात को अक्षरत: स्वीकार भी करता हूँ। जब उन्होंने इस प्रकार की बात कही तो मुझ में उत्साह और आत्म विश्वास जागृत हुआ। इसलिए पाठकों से नम्र निवेदन है कि वे इस परिस्थिति पर विचार करके, जहाँ कहीं कोई त्रुटि दिखाई दे उसको नजर अंदाज कर दें।

वैश्य-अग्रवाल समाज जिसको मैं असीम प्यार और आदर करता हूँ उसे इस पुस्तक के रूप में छटा उपहार है। समाज के प्रबुद्ध समाज को उनमें दी सामग्री बहुत पसंद आई यह बहुत संतोष का विषय हैं। उन पुस्तकों के लगभग सभी अध्याय ''मेरी दिल्ली'' समाचार पत्र के साथ अन्य सामाजिक पत्रिकाओं में प्रकाशित किये गये जिनके माध्यम से पाठकों को सुगमता से उपलब्ध हो सकें। यह उनका बड़ा ही सराहनीय काम था जिसके लिए आभार व्यक्त करना आवश्यक है।

अन्त में पुन: निवेदन है कि इस पुस्तक में ली गई पठनीय सामग्री विभिन्न उपलब्ध साहित्य से ली गई है। इतिहास के तथ्यों में परिवर्तन नहीं किया जा सकता केवल शब्दों और वाक्यों को पाठकों की रूचि को ध्यान में रखकर परिवर्तित किया जाता है। इसलिए जहाँ कहीं त्रुटि हो उसके लिए मुझे क्षमा कर दें।

सूबे सिंह गुप्ता

15 सितम्बर 2008

विषय सूची

1.	अग्रभागवत की संक्षिप्त कथा	9
2.	भारत रत्न–डॉ. भगवान दास	19
3.	साहित्य सृष्टा एवं कला मर्मज्ञ–अग्रज राय कृष्णदास	25
5.	कविवर–जय शंकर प्रसाद	33
6.	पताका रक्षा प्रेरक–श्यामलाल गुप्ता	41
7.	साहित्यकार–बाबू गुलाब राय	49
8.	कर्मयोगी–सेठ घनश्याम दास बिड़ला	57
9.	परोपकारी–सेठ रामकृष्ण डालमिया	67
10.	रायबहादुर लाला रामरूप	77
11.	प्रेरक पुरुषार्थी–बद्री प्रसाद अग्रवाल	83

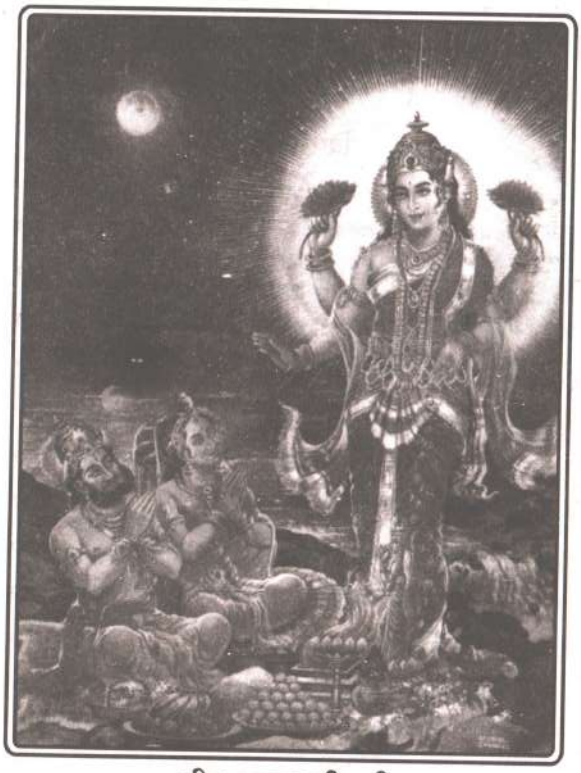

श्री महालक्ष्मी जी
महाराजा अग्रसेन व माधवी को
आशीर्वाद प्रदान करती हुई

श्री महालक्ष्मी वरदानदिवस : मार्गशीर्ष शुक्ल पूर्णिमा

अग्र-भागवत की संक्षिप्त कथा

अग्र-उपाख्यान के अनुसार–महाराजा अग्रसेन का जन्म इश्वाकु कुल में हुआ था। इश्वाकु कुल में अनेकों पुण्यकर्ता महापुरुष हुए हैं। महाराजा मान्धाता, महाराज सगर, दिलीप, भागीरथ, कुंकुत्स्य, महाराज मरूत, महाराजा रघु, भगवान श्रीराम आदि अनेकों कीर्तिवंत राजाओं की कथाओं से यह कुल गौरवांतित हुआ है। इसी कुल में महाराजा अग्निवर्ण के दैव पुत्रों सदृश्य पाँच पुत्र हुये। इनमें से 3 पुत्रों ने अपने वंश का विस्तार किया। राजा विश्वशाह के पुत्र प्रसेनजीत हुये जिन्होंने एक अजेयपुरी का निर्माण करवाया। इन्हीं प्रसेनजीत के प्रतापी पुत्र बृहतसेन हुये। बृहतसेन के कुल में राजा वल्लभसेन उत्पन्न हुये। सूर्यकुल में उद्भूत महाराज वल्लभसेन प्रतापपुर के राजा (नायक) थे। प्रतापपुर उन्नीस गांवों का छोटा-सा राज्य था। यह नगर तीनों ओर नदियों से घिरा हुआ था। वल्लभसेन की महारानी भगवती ने अश्वनी मास के शुक्ल पक्ष की प्रथम तिथि को रविवार के दिन मध्यान्ह काल में महेन्द्र समय के शुभ मुहूर्त में एक बालक को जन्म दिया, जिसका नाम अग्र रखा गया।

किशोरावस्था आने पर अग्रसेन जी को मालव निवासी महर्षि तांडव्य के आश्रम में विद्या अर्जन के लिए भेजा गया। यथासमय अग्रसेन जी ने दीक्षा, संग्रह, सिद्धि और प्रयोग इन चारों पादों से युक्त धनुर्वेद की तथा रहस्य सहित शस्त्र समूहों की शिक्षा प्राप्त की। तलवार आदि शस्त्र चलाना तथा संहार विधि सहित सम्पूर्ण अस्त्र शस्त्रों का रहस्यमय ज्ञान उनके गुरू ने उन्हें विधिवत् सिखलाया। ताण्डव्य ऋषि के आश्रम में ही अग्रसेन की 14वीं वर्षगांठ मनाई गई तत्पश्चात् सम्पूर्ण विद्या में निष्णात अग्रसेन अपने राज्य में वापस आ गये।

महाभारत के युद्ध में शामिल होना

उसी समय राजा वल्लभसेन को पाण्डवों की तरफ से सेना सहित युद्ध में शामिल होने का निमंत्रण मिला। क्षत्रिय धर्म के अनुसार उन्होंने निमंत्रण स्वीकार किया। अग्रसेन भी पिता के साथ युद्ध में शामिल होना चाहते थे परन्तु बल्लभसेन ने उसको साथ ले जाने से मना कर दिया। इस परिस्थिति में अग्रसेन ने अपनी माता जी से प्रार्थना की। अनुमति मिलने पर वे अपने पिताजी के साथ महाभारत युद्ध में भाग लेने गये थे।

युद्ध के 9वें दिन प्रतापी भीष्म के वाणों से वल्लभसेन घायल हो गये। पिता को घायल होता देख अग्रसेन क्रोध में भर उठे और भयंकर युद्ध किया। पिता के वध से

श्री महालक्ष्मी जी
महाराजा अग्रसेन व माधवी को
आशीर्वाद प्रदान करती हुई

श्री महालक्ष्मी वरदानदिवस : मार्गशीर्ष शुक्ल पूर्णिमा

अग्र-भागवत की संक्षिप्त कथा

अग्र-उपाख्यान के अनुसार–महाराजा अग्रसेन का जन्म इश्वाकु कुल में हुआ था। इश्वाकु कुल में अनेकों पुण्यकर्ता महापुरुष हुए हैं। महाराजा मान्धाता, महाराज सगर, दिलीप, भागीरथ, कुंकुत्स्य, महाराज मरूत, महाराजा रघु, भगवान श्रीराम आदि अनेकों कीर्तिवंत राजाओं की कथाओं से यह कुल गौरवांतित हुआ है। इसी कुल में महाराजा अग्निवर्ण के दैव पुत्रों सदृश्य पाँच पुत्र हुये। इनमें से 3 पुत्रों ने अपने वंश का विस्तार किया। राजा विश्वशाह के पुत्र प्रसेनजीत हुये जिन्होंने एक अजेयपुरी का निर्माण करवाया। इन्हीं प्रसेनजीत के प्रतापी पुत्र बृहतसेन हुये। बृहतसेन के कुल में राजा वल्लभसेन उत्पन्न हुये। सूर्यकुल में उद्भूत महाराज वल्लभसेन प्रतापपुर के राजा (नायक) थे। प्रतापपुर उन्नीस गांवों का छोटा-सा राज्य था। यह नगर तीनों ओर नदियों से घिरा हुआ था। वल्लभसेन की महारानी भगवती ने अश्वनी मास के शुक्ल पक्ष की प्रथम तिथि को रविवार के दिन मध्यान्ह काल में महेन्द्र समय के शुभ मुहूर्त में एक बालक को जन्म दिया, जिसका नाम अग्र रखा गया।

किशोरावस्था आने पर अग्रसेन जी को मालव निवासी महर्षि तांडव्य के आश्रम में विद्या अर्जन के लिए भेजा गया। यथासमय अग्रसेन जी ने दीक्षा, संग्रह, सिद्धि और प्रयोग इन चारों पादों से युक्त धनुर्वेद की तथा रहस्य सहित शस्त्र समूहों की शिक्षा प्राप्त की। तलवार आदि शस्त्र चलाना तथा संहार विधि सहित सम्पूर्ण अस्त्र शस्त्रों का रहस्यमय ज्ञान उनके गुरू ने उन्हें विधिवत् सिखलाया। ताण्डव्य ऋषि के आश्रम में ही अग्रसेन की 14वीं वर्षगांठ मनाई गई तत्पश्चात् सम्पूर्ण विद्या में निष्णात अग्रसेन अपने राज्य में वापस आ गये।

महाभारत के युद्ध में शामिल होना

उसी समय राजा वल्लभसेन को पाण्डवों की तरफ से सेना सहित युद्ध में शामिल होने का निमंत्रण मिला। क्षत्रिय धर्म के अनुसार उन्होंने निमंत्रण स्वीकार किया। अग्रसेन भी पिता के साथ युद्ध में शामिल होना चाहते थे परन्तु बल्लभसेन ने उसको साथ ले जाने से मना कर दिया। इस परिस्थिति में अग्रसेन ने अपनी माता जी से प्रार्थना की। अनुमति मिलने पर वे अपने पिताजी के साथ महाभारत युद्ध में भाग लेने गये थे।

युद्ध के 9वें दिन प्रतापी भीष्म के वाणों से वल्लभसेन घायल हो गये। पिता को घायल होता देख अग्रसेन क्रोध में भर उठे और भयंकर युद्ध किया। पिता के वध से

दुखी अग्रसेन को विलाप करता देख भगवान श्रीकृष्ण ने उन्हें सांत्वना दी और उन्हें अपने राज्य वापस भेज दिया। प्रताप नगर में अग्रसेन ने अपने पिता के लिये लोक संबंधी सभी कर्म अनुष्ठान विधिवत् सम्पन्न किये।

महाराजा अग्रसेन का राज्याभिषेक और कुंदनसेन का षडयंत्र

तत्पश्चात् पुरोहितों, ऋषियों, पंडितों आदि ने मंत्रणा करके अग्रसेन को राजगद्दी पर बैठाने का निर्णय लिया। उस समय राज्य का शासन वल्लभसेन के अनुज कुंदसेन के हाथों संचालित हो रहा था। जब अग्रसेन के राज्यारोहण का समय आया तो कुंदसेन का पुत्र वज्रसेन कुपित हो उठा। उसने अपने पिता को सलाह दी कि अग्रसेन को मारकर वह स्वयं राज्य करे। कुंदसेन भी सत्ता छिन जाने के भय से दुखी था। उसने छल करके राजमहल में सोये हुए अग्रसेन को बंदी बना लिया। अग्रसेन ने अपने काका जी से बहुत विनती की कि वह उसे छोड़ दें और राज्य स्वयं करें, परन्तु वह नहीं माना। सारी प्रजा के समक्ष उसने स्वयं का राजतिलक करवाया और अग्रसेन को बंदी बनाकर जेल भेज दिया। राज्य का एक आमात्य वल्लभसेन का हितैषी था उसने अग्रसेन जी को मुक्त करके सुरंग द्वारा निकाल दिया और स्वयं कुंदसेन के सैनिकों से लड़ते हुये वीरगति को प्राप्त हुआ।

कुंदसेन ने यह समाचार प्राप्त होते ही अग्रसेन का पीछा किया। जिस जंगल में अग्रसेन छिपे थे उसमें उसने आग लगवा दी। अग्रसेन को मरा हुआ जान वह अपने राज्य वापस लौट गया। जंगल में गुफा थी उसमें छिपकर अग्रसेन ने अपने प्राणों की रक्षा की। उसी समय अग्रसेन के फूफा अनंगपाल ने अग्रसेन जी को सब भाँति से सहयोग दिया। उनके सहयोग से वे वहाँ से तुरंत कूच कर गये क्योंकि कुंदसेन पुन: आकर उन्हें मारने की चेष्टा कर रहा था। अग्रसेन जी जैसे ही गुफा से बाहर आये कुंदसेन और बज्रसेन के सैनिकों ने उन्हें घेर लिया। भयंकर युद्ध हुआ। युद्ध में अनंगपाल शहीद हो गए। अग्रसेन ने कुंदसेन को पकड़कर उसका हाथ काट डाला। कुंदसेन अपनी जान बचाकर भाग गया।

गर्ग मुनि के आश्रम में

युद्ध से क्लांत अग्रसेन जी अज्ञात दिशा की ओर चल पड़े। चलते-चलते वे नदी पार कर प्रतापपुर की सीमा को त्याग बीहड़ वन में समतल मार्ग पर आ गए। वहीं एक शिला पर बैठकर वह विश्राम करने लगे। वह भूमि किसी के अधीन नहीं थी। वहाँ गर्ग ऋषि का आश्रम था। समिधा लेने आए गर्ग मुनि के शिष्यों ने जाकर अग्रसेन के बारे में सूचना दी। गर्ग मुनि वहाँ आए और अग्रसेन जी को समझा-बुझाकर अपने साथ ले गए और आश्वस्थ किया कि वह ऐसा उपाय करूंगा कि तुम पूरे देश में पूज्यनीय हो जावोगे। वहाँ तप कर रहे अनेक ऋषि-मुनियों ने अग्रसेन जी को आशीर्वाद दिया। गर्ग मुनि ने अग्रसेन जी को सुरथ

और समाधी वैश्य की कथा सुनाई जिन्हें मेघा मुनि ने देवी की आराधना करने की प्रेरणा दी थी। जिस तप को करने के बाद सुरथ को उसका खोया हुआ राज्य मिल गया और समाधी को मोक्ष की प्राप्ति हुई। वह अपनी पत्नी-पुत्रों द्वारा राज्य से निष्कासित किया गया था अत: उसने देवी की आराधना अपने मोक्ष के लिए की थी। गर्ग मुनि ने कहा-अग्रसेन त्रिगुणमयी परम ईश्वरी (मूलप्रकृति) महालक्ष्मी ही सबका आदि कारण है। तुम उन्हीं की आराधना करो वे ही तुम्हें राज्य वैभव संपन्न करेगी।

महालक्ष्मी की तपस्या

उसी वन में अग्रसेन ने महालक्ष्मी की कठोर तपस्या की। महालक्ष्मी उनके सामने साक्षात् प्रकट हो गई और अग्रसेन जी को आशीर्वाद प्रदान करती हुई बोली, "प्रिय वत्स तुम्हारी सभी मनोकामना पूर्ण होंगी।" वरदान से आपूर अग्रसेन गर्ग मुनि के पास पहुँचे और उन्हें प्रणाम कर महालक्ष्मी के वरदान की बात कही। तब गर्ग मुनि ने उन्हें पराक्रम द्वारा अपनी कीर्ति स्थापित करने के लिए प्रयत्न करने का आदेश दिया और कहा इसी भूमि पर महाराज मरूत ने सौंवा यज्ञ पूर्ण किया था। इतना धन सोना आदि दान किया था कि वे अपने साथ नहीं ले जा सके। वह यहाँ पृथ्वी के अन्दर गड़ा है। तुम उसे ग्रहण कर नए राज्य की स्थापना करो। गर्ग मुनि ने कहा-"मेरे आश्रम के समीप मरूप्रदेश की वह भूमि है जो बालू से परिपूर्ण तथा पश्चिम दिशा में फैली हुई है, तुम इसी भूमि पर राज्य करो।" यह कहकर उन्होंने उस भूमि पर महाराज अग्रसेन का राजतिलक कर दिया। अग्रसेन जी ने इसके बाद भगवान शंकर की आराधना की और उस भूमि से अपार धनराशि एकत्र कर उसी बालू और वन से परिपूर्ण स्थान पर एक पुरी का निर्माण कराया जिसका नाम 'अग्रेय' रखा।

उसी समय गर्ग मुनि ने अग्रसेन को वरदान दिया कि तुम्हारे पास सदैव अक्षय धन व सम्पत्ति रहेगी एवं शत्रु सदैव तुमसे पराजित रहेंगे।

अग्रेय नगरी की स्थापना

अग्रेय नगरी की विधिवत स्थापना के बाद देश-देशांतरों से चारों वर्णों के लोग नर-नारी अग्रेय गणराज्य में बसने की इच्छा से वहाँ आने लगे। अग्रसेन जी ने सभी वर्णों को अपने नगर में यथास्थान देकर बसाया। वह भूमि जो कभी निर्जन प्रदेश थी अब धन-धान्य से संपन्न हो गयी। अग्रसेन ने राज्य के मध्य में महालक्ष्मी तथा अन्य देवी-देवताओं के मंदिर बनवाए थे जहां दिन-रात पूजा चलती रहती थी। दिनों-दिन कृषि की उन्नति होने लगी, गोधन का संवर्धन होने लगा, उद्योग धन्धे विकसित होने लगे। महालक्ष्मी यहां हर्षपूर्वक निवास करने लगी, और प्रजा के साथ महाराजा अग्रसेन अपने इस राष्ट्र में राष्ट्र-संरक्षिका श्री महालक्ष्मी की पूजा श्रद्धा और विश्वास पूर्वक राज करने लगे।

एक दिन वहां प्रतापपुर के कुछ नागरिक आए और अग्रसेन को नगर की दुरावस्था का चित्रण करते हुए बताया कि कुंदसेन के अत्याचारों से संतप्त सौम्य ऋषि उनकी माता तथा छोटे भाई शौर्यसेन को लेकर कहीं चले गए हैं। आप उन्हें ढूंढ कर उन्हें अपने राज्य में लाने की कृपा करें। अग्रसेन ने उन्हें ढूंढने के लिए चारों तरफ खोजियों को भेज दिया।

अग्रसेन द्वारा नागलोक की यात्रा

इसके बाद गर्ग मुनि के निर्देश पर अग्रसेन नागलोक के राजा महीधर की कन्या को वरण करने मणिपुर चल पड़े। गर्ग मुनि ने उन्हें अपने सखा उद्दालक मुनि का परिचय देते हुए बताया कि वे तुम्हें वहां सहायक बनकर नागलोक में तुम्हारा प्रवेश कराने में सहयोग देंगे। राज्य को गर्ग मुनि की रक्षा में सौंप कर सातों लोकों को पार कर अग्रसेन ने पाताल लोक में स्थापित 'मणिपुर' राजनगरी में प्रवेश किया। वही लोहित नदी के किनारे वट के नीचे बैठे उद्दालक मुनि से उनकी भेंट हो गई। अग्रसेन जी ने मुनि के चरणों में शीश नवाकर अपना परिचय दिया। उद्दालक ने उन्हें मणिपुर के राजा महीधर के उद्यान में वास करने को कहा। वहां पहुंचकर उन्होंने उद्यान में स्थित 'हाटकेश्वरम्' महादेव की पूजा की।

अग्रसेन का उपवन में विश्राम और माधवी का सखियों के साथ आगमन

वे ज्योतिर्लिंग हाटकेश्वरम् के दर्शन कर मणिपुर के उपवन में विश्राम कर रहे थे। वहीं नागकन्या नागराजसुता 'माधवी' सखियों सहित उपवन के सरोवर में जलक्रीड़ा कर रही थी। सायंकाल में गउऐं वनों में चारा आदि करके वापिसी में उसी सरोवर में झुंड में जल पीने लगी। तभी एक शेर वहां आ निकला और अपनी भूख मिटाने के लिए शिकार करने के लिए जोर से दहाड़ की। उस शेर की भीषण गर्जना से सरोवर में पानी पीते हुए सारा गोधन और माधवी तथा उसकी सखियां भयातुर हो गये। महाराजा अग्रसेन यह सब देखकर उन सभी की रक्षा करने को तैयार हुए। इस परिस्थिति में उनके लिए सबसे आसान सिंह की हत्या कर देना था। परन्तु उन्होंने उनकी रक्षा और शेर को जीवित रहने देने के लिए अपने तीर कमान से शेर के चारों ओर बाणों का घेरा खड़ा कर दिया।

अग्रसेन का माधवी से विवाह

महीधर की रानी नागेन्द्री की पुत्री का नाम माधवी था। उसने उद्यान में अग्रसेन के पराक्रम को देखकर मन ही मन उन्हें अपना पति अंगीकार कर लिया। लेकिन नागराजा महीधर अपनी पुत्री का विवाह इन्द्र से करना चाहते थे। बहुत वाद-विवाद के बाद महीधर ने अपनी पुत्री माधवी का विवाह अग्रसेन से कर दिया। इस शुभ विवाह के उपलक्ष्य में सभी लोगों से परामर्श कर महीधर ने घोषणा की कि आज से

नागलोक का यह उत्तम तल, **'अग्रतल'** के नाम से तीनों लोकों (देव लोक, नाग लोक, मानव लोक) में प्रसिद्ध होगा। इस तल पर जो नगर बसा वह अग्रतल के नाम से जाना गया तथा अब त्रिपुरा की राजधानी अगरतला के नाम से प्रसिद्ध है। इस शुभ विवाह के पूर्व अग्रसेन जी को कठिन परीक्षा से गुजरना पड़ा। पन्नगी नाम की नागकन्या चरित्र की परीक्षा के उद्देश्य से अग्रसेन जी के पास आई और उन्हें सब कलाओं से रिझा कर उनके मन को डिगाने का प्रयत्न किया। किन्तु अग्रसेन जी ने उसे वापस लौटा दिया। उन्होंने कहा कि वह एक पत्नीधारी हैं इसलिए माधवी के सिवाय वह और किसी से संबंध नहीं बनाएंगे। पन्नगी के वापस जाते ही सर्पदंश नामक दुर्दम्य नाग अपने सैनिकों सहित आया और अग्रसेन जी से कहा कि वह माधवी से स्वयं विवाह करेगा इसलिए अग्रसेन माधवी से विवाह न करें। भयंकर युद्ध हुआ, अन्त में अग्रसेन जी विजयी हुए। महर्षि उद्दालक तथा महीधर ने अग्रसेन के अंग-प्रत्यंग की पीड़ा को अपनी मंत्रशक्ति से क्षण भर में नष्ट कर दिया और सर्पदंश वापस चला गया।

अग्रसेन का नारी के प्रति दृष्टिकोण

अग्र-भागवत् से महाराजा अग्रसेन के विषय में नारी के प्रति भावना उभरकर सामने आई उन्होंने उसकी गरिमा बनाए रखने का उदाहरण पेश किया। जब उनका महीधर की सुपुत्री माधवी से विवाह सम्पन्न हो चुका तो राजा ने उस समय में प्रचलित प्रथा के अनुसार महाराज अग्रसेन को अपनी अन्य कन्याओं को वरण करने का प्रस्ताव किया। जिसको उन्होंने स्वीकार नहीं किया।

महाराजा अग्रसेन अपने नियमों को पूरी तरह से निभाते थे इसी कारण उन्होंने अग्रोहा में आकर बसने वालों से एक पत्नी व्रत निभाने का वचन लिया।

विवाह में महीधर ने अग्रसेन को अतुल धन ऐश्वर्य प्रदान किया। गर्ग मुनि के नेतृत्व में अग्रसेन जी वापस अपने गृह नगर की ओर चले। मार्ग में सात दिन विश्राम करते हुए वे अपने राज्य में पहुँचे। यहां प्रतापपुर के पुरोहित, माता वैदर्भी तथा अनुज शौर्यसेन व उनके संरक्षक सौम्य ऋषि पुरजनों के साथ उनकी अगवानी एवं स्वागत करने के लिए उपस्थित थे। अपनी माता और अनुज को देखकर अग्रसेन जी अत्यंत प्रसन्न हुए। पांच वर्षों के लम्बे समय के बाद उनका मिलन अत्यंत आनन्ददायी था। इस प्रकार सब प्रकार से संतुष्ट महाराजा अग्रसेन चारों वर्णों को अपने-अपने कर्म में स्थापित करके उनकी सदैव धर्मपूर्वक रक्षा करते थे। उनका किसी के प्रति द्वेष भाव नहीं था। वे प्रजापति ब्रह्मा के समान ही समस्त प्राणियों के प्रति समभाव रखते थे। उनके पुण्य से यहाँ की भूमि जोते बिना ही अन्न उत्पन्न करती थी, गाएं घड़े भर-भर के दूध देती थीं।

देवेन्द्र इन्द्र की ईर्ष्या

अग्रसेन के वैभव से ईर्ष्या करने वाले इन्द्र ने वर्षाकाल में उनके राज्य में वर्षा बन्द कर दी। महाराजा अग्रसेन ने जल की प्राप्ति के लिए नदियों से नहर द्वारा पानी की व्यवस्था कर अकाल से राज्य की रक्षा की। उनके इस पराक्रम से कुपित इन्द्र ने अग्नि देव को आज्ञा दी कि वह अग्रेय गणराज्य की सारी फसल जला दें। अग्रेयगण के खेत अग्नि से प्रज्ज्वलित हो उठे। प्रजाजनों ने किसी तरह इस अग्नि पर विजय पाई। तब गर्ग मुनि ने अग्रसेन को बताया कि इन्द्र के क्रोध के कारण राज्य में यह अशांति फैल रही है। तब अग्रसेन जी पुनः महालक्ष्मी की शरण में गए। उनकी आराधना की और उन्हें प्रसन्न कर उनसे अभयदान प्राप्त किया। महालक्ष्मी ने वरदान दिया कि "हे राजन्, मैं तुम्हें इन्द्र के भय से मुक्त करती हूँ। मैं उन्हें स्तम्भित कर उनके शस्त्रों की शक्ति को क्षीण कर दूंगी, इन्द्र के वज्र के भय से तुम भयभीत न हो, मुझसे और वर मांगो।" अग्रसेन ने कहा, देवी आप मुझ पर सदैव प्रसन्न रहें, यही कामना है। महालक्ष्मी से वरदान पाकर राजा अग्रसेन ने देवराज इन्द्र को युद्ध के लिए आह्वान किया। दोनों में भयंकर युद्ध हुआ। पृथ्वी कांपने लगी, तब देवर्षि बृहस्पति युद्ध के मध्य में खड़े हो गए और युद्ध के भयंकर परिणामों से दोनों को समझाते हुए संधि की प्रस्तावना रखी। देवराज इन्द्र और अग्रसेन में ऐसी मित्रता हुई कि जिसका कभी अन्त नहीं हुआ। इन्द्र के जाते ही अग्रेय गणराज्य में वर्षा के काले मेघ सक्रिय हो गए।

अग्रसेन का परिवार

अग्रसेन के अठारह पुत्र तथा एक कन्या हुई। सभी पुत्र एक-एक वर्ष के अंतराल में हुए। उनके नाम क्रमशः विभू, विक्रम, अजेय, विजय, अनल, नीरज, अमर, नगेन्द्र, सुरेश, श्रीमंत, सोम, धरणीधर, अतुल, अशोक, सुदर्शन, सिद्धार्थ, गणेश्वर, तथा लोकपति थे। पुत्री का नाम ईश्वरी था जो काशी राज्य के राजा महेश से ब्याही गई थी। जो आगे चलकर मोक्षधाम में प्रवृत्त होकर ब्रह्म स्वरूप महामुनि के रूप में विख्यात हुए हैं। इसी प्रकार वासुकी नाग के नाम से विख्यात महाशक्तिशाली नागराज ने अपनी कन्याएं विधिपूर्वक अग्रसेन जी के पुत्रों को प्रदान की। उनके नाम इस प्रकार हैं–

विभू सेन	–	चिन्ना	लोकपति सेन	–	प्रभवती
विक्रम सेन	–	शुभा	अजेय सेन	–	शीला
विजय सेन	–	कॉवी	अनल सेन	–	स्वाती
नीरज सेन	–	रेणुका	अमर सेन	–	क्षमा
नगेन्द्र सेन	–	शिरा	सुरेश सेन	–	सखी

श्रीमंत सेन	–	श्रीमाला	धरणीधर सेन	–	प्रिया
सोम सेन	–	शांती	अतुल सेन	–	सुकन्या
अशोक सेन	–	सावित्री	सुदर्शन सेन	–	हेमवती
सिद्धार्थ सेन	–	तारा	गणेश्वर सेन	–	नागमणि

मुनि गर्ग के परामर्श के अनुसार वंशकार यज्ञ तथा पशु बलि का निषेध व अहिंसा के लिए क्षत्रिय वर्ण का त्याग

महाराजा अग्रसेन ने गर्ग मुनि की आज्ञा से अठारह वंशकार यज्ञ प्रारम्भ करने का संकल्प लिया। एक-एक करके 17 यज्ञ पूर्ण हुए। सत्रह यज्ञ करने के बाद, यज्ञों में होने वाली पशु बलि से उन्हें विरक्ति हो गई, और अठारहवां यज्ञ उन्होंने वैश्य वर्ण धारण कर बलि से रहित अहिंसा के सिद्धान्त पर सम्पन्न किया। अठारहों यज्ञ की तैयारी चैत्र मास की पूर्णिमा तिथि से प्रारम्भ हुई। इस यज्ञ के अठारह द्वार और अठारह कुंड बनाए गये थे। गर्ग ऋषि ने आचार्य पद ग्रहण किया, वेदव्यास श्री ब्रह्म पद पर अभिविक्त हुए। अनेक तेजस्वी ऋषि उस यज्ञ में ऋत्विज हुए। उनके नाम क्रमशः कश्यप, वसिष्ठ, गौतम, अत्रि, जैमिनी, भारद्वाज, साकल, भारवी, शांडिल्य, तांडय, मुद्गल, कौशिक, कौण्डिन्य, आश्वलायक, माण्डव्य, मालव थे। बैसाख मास के शुक्ल पक्ष में गुरुवार, आश्लेषा नक्षत्र में महर्षि गर्ग ने अग्नि प्रज्ज्वलित करवाई, तब इस महायज्ञ का आरम्भ हुआ। सत्रह दिनों में क्रमशः सत्रह यज्ञ सम्पन्न हुए। अठारहवें दिन अग्रसेन ने यज्ञ में होने वाली हिंसा का निषेध किया। गर्ग मुनि सहित अनेक ऋषियों ने उन्हें बहुत ऊंच-नीच समझाया, पाप पुण्य का भय दिखाया पर अग्रसेन जी ने कहा समुद्र भले ही अपनी सीमाओं को लांघ जाए, हिमालय भले ही हिम का परित्याग कर दे, चंद्रमा भले ही अपनी शीतलता त्याग दे, किन्तु मैं निरपराध पशुओं का वध कदापि नहीं कर सकता।

महाराजा अग्रसेन के लिए आहूति देना आवश्यक था। निरामिष आहूति के लिए उन्होंने वैश्य वर्ण धारण किया। महाराजा अग्रसेन ने अहिंसा के लिए क्षत्रियधर्म की आहुति दे दी और वे प्रजा की भलाई में पशुबलि करने से बच पाए और अठारहवां यज्ञ उन्होंने वैश्य धर्म के अनुरूप पूरा किया।

आग्रेय नगर पर आक्रमण

अग्रसेन जी की कीर्ति पताका से क्षुब्ध होकर ईर्ष्यालु राजाओं ने अग्रेय गणराज्य से युद्ध करने की ठानी। मालव के राजा यतेन्द्र ने रोहता के नरेश द्वारा रखा गया युद्ध का प्रस्ताव स्वीकार कर, अग्रेय राज्य को चारों ओर सेना से घेर लिया और युद्ध की घोषणा कर दी। अनुज शौर्यसेन, महातेजस्वी सेनापति पदमकेतु, युद्ध कुशल सुषेन सहित अनेकों वीर, अग्रसेन के सभी पुत्र युद्ध का सामना करने हेतु तत्पर हो गए। विभूसेन के नेतृत्व में युद्ध का प्रारम्भ हुआ। राजा दिग्गजसेन द्वारा संरक्षित संपूर्ण

सेना को नष्ट-भ्रष्ट कर विभूसेन ने दिग्गजसेन को बंदी बना लिया। अग्रसेन जी ने विरोधी सभी राजाओं को मुक्त करते हुए उन्हें बैर-द्वेष से मुक्त होने का उपदेश दिया। अग्रसेन की जय-जयकार करते हुए सभी राजा अपने-अपने गृह नगर चले गए। अग्रसेन जी की कीर्ति तीनों लोकों में फूलों में सुगंध के समान फैलने लगी।

अग्रसेन की बचपन के मित्र से मुलाकात

एक दिन उसने कारागार में बंदी अपने बचपन के मित्र शाकुन्त नामक ब्राह्मण को देखा, तो उन्हें आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा–मित्र! तुम यहाँ कैसे?तब शाकुन्त ने कहा–''क्षुधा से विवश होकर मैंने अधर्म किया। यह दोष मेरा नहीं क्षुधा का है।'' अग्रसेन ने गले लगाकर उसे प्रचुर धन-धान्य देकर उसको अपराध से मुक्त करके कारावास से रिहा किया। तब उन्होंने विचार किया कि ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि जिसमें इस घटना की पुनरावृत्ति न हो।

परस्पर सहयोग के लिए एक ईंट और एक मुद्रा देने की घोषणा

तब उन्होंने भरे दरबार में यह घोषणा की कि, 'आज से इस राष्ट्र में जो भी व्यक्ति दुर्भाग्यवश आजीविका से हीन हों, उन्हें बिना याचना किए ही राज्य के सभी निवासी 'निष्क' (एक रूपया) एक ईंट स्वयं उनके पास जाकर भेंट स्वरूप प्रदान करें।''

इससे राज्य में परस्पर बंधुत्व की भावना का विकास होगा। इस प्रकार सभी प्राणियों के प्रति कुटुम्बवत समत्व स्थापना के इस पुनीत कार्य का जो विस्तार होगा वह सभी यज्ञों से बढ़कर है, अत: सभी को इस कर्म यज्ञ को सदैव गतिशील रखना चाहिए।

महाराजा अग्रसेन का अग्रेय-गण राज्य से प्रस्थान

द्वापर और कलि के संधि काल के प्रभाव से जब सभी ओर धर्म का मार्ग अवरूद्ध होने लगा तब गर्ग ऋषि की आज्ञा से धर्म और शांति की स्थापना हेतु उन्होंने अग्रेय गण राज्य से प्रस्थान किया। उन्होंने कलि के प्रभाव से उत्पीड़ित प्रजा की रक्षा करने के साथ-साथ उन्हें जीवन धर्म का उपदेश भी दिया। देश में राजा अग्रसेन के वचनों को सुनने स्थान-स्थान पर लोग भारी मात्राओं में उपस्थित होकर अपने जीवन को धन्य बनाने लगे। वे लोगों की मनोभावनाओं को धर्म की ओर खींचते हुए, संचेतना का प्रकाश फैलाते हुए पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर रहे थे। उन्होंने यज्ञों द्वारा देवताओं को परितुष्ट किया, अपने श्रद्धायुक्त सत्कर्मों से पितरों को, यथा योग्य अनुग्रह करके दीन-दुखियों को, तथा आकांक्षित भोग्य वस्तुओं एवं राज्य सेवाओं से सम्पूर्ण प्रजा को तृप्त किया।

विभूसेन को राजतिलक

एक सौ आठ वर्ष की आयु पूर्ण हो जाने पर उन्होंने अपने सभी स्नेहीजनों, प्रजा के परामर्श से विभूसेन का राजतिलक कर दिया। विभू को अनेक आदर्शों से आपूर कर उन्हें राजधर्म की शिक्षा दी। अग्रेय देश विभू को दिया, अन्य पुत्रों को सीमान्त देशों का अधिपति बनाया।

वानप्रस्थ आश्रम धारण

शासन व्यवस्था करके वे वन की और चल पड़े। प्रजा ने उन्हें रोते हुए वानप्रस्थ प्रस्थान के लिए विदा दी। इस प्रकार अग्रसेन माधवी के साथ मार्गशीर्ष पूर्णिमा को अग्रेय राज्य से बाहर निकले। कठिन व्रत धारण किए हुए वे पति-पत्नी यमुना जी के तट पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने अनेक व्रत-तप अनुष्ठान संपूर्ण किए। पुन: एक बार महालक्ष्मी का स्तवन कर उन्हें प्रसन्न किया। वर्षों तक एक पैर पर खड़े रहकर दुर्घष योग का अनुष्ठान किया। दोनों ही अत्यंत दुर्बल हड्डी का ढांचा बनकर रह गए, तब महालक्ष्मी, साक्षात् उनके समक्ष प्रकट हुई और स्वयं यह वरदान दिया कि 'मेरी कृपा से तुम्हारा वंश स्वयं तुम्हारे तेज से परिपूर्ण होगा।' तुम्हारा वंश जगत में विख्यात होगा। तुम्हारे वंशजों द्वारा संतुष्ट होने पर मैं उन्हें राज्य, दीर्घायु निरोग शरीर व श्रेष्ठ पुत्र प्रदान करूंगी तब उनके लिए इस संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं होगा। मैं तुम्हें वचन देती हूँ कि जब तक सूर्य और चंद्रमा विद्यमान हैं, पूजित होने पर मैं तुम्हारे कुल का परित्याग नहीं करूंगी।

अग्रसेन को सशरीर ले जाने के लिए स्वर्ग से विमान

महालक्ष्मी के अंतर्ध्यान होने के पश्चात देवताओं ने स्वर्ग से एक विमान भेजा जो उन्हें सशरीर स्वर्ग ले जाने के लिए आया था। लेकिन अग्रसेन ने उसे वापस कर दिया और कहा स्वर्गलोक से तो पुण्य क्षय होने पर वापिस पृथ्वी पर आना पड़ता है, मैं तो मोक्षधाम प्राप्त करूंगा। अपनी तपस्या से उन्होंने सनातन मोक्ष रूपी सिद्धी प्राप्त कर ली।

ऐसे युगपुरुष महाराजा अग्रसेन के सम्मान में भारत सरकार के डाक विभाग ने 25 पैसे मूल्य की 24-9-1976 को 80 लाख डाक टिकटें जारी की।

अग्रोहा हमारा पवित्र धाम है। वर्ष में एक बार अवश्य जायें।

▲▲▲

भारत रत्न–डॉ. भगवान दास

भारत रत्न–डॉ. भगवान दास

डॉ. भगवान दास को भारत रत्न का सम्मान 1955 में देश के राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद द्वारा प्रदान किया गया था। इस प्रकार आप अग्रवाल समाज के गौरव ही नहीं रहे बल्कि समस्त भारतवर्ष देश के गर्व व गौरवपूर्ण नेता बन गये। डॉ. भगवान दास जी का जन्म 12 जनवरी 1869 में वाराणसी में हुआ। उनका परिवार 16वीं शताब्दी में अग्रोहा (हरियाणा) से दिल्ली आया। फिर हुमायूँ की फौज के साथ पूर्वी उत्तर प्रदेश में मिर्जापुर जिले के चुनार और आहरूरा नामक कस्बों में बस गया। कालान्तर में वे लोग बनारस चले गये। परिवार का व्यापार सुरत, मुम्बई, मद्रास तक फैल गया था। उस अवधि की सरकार से पूरी मदद मिली। वे उनके बैंकर्स (साहुकार) थे और मसुलीपटनम में टकसाल थी। अपार दौलत का प्रभाव कलकत्ता में बड़ा बाज़ार बनवाने में दिखाया। वहाँ ''मनोहर दास स्ट्रीट' आज भी उनके परिवार की याद दिलाता है। कलकत्ता का मैदान क्षेत्र आपके पूर्वजों के उदार अनुदान का उदाहरण है पिताजी साह माधवदास ने विरासत को दक्षता से आगे बढ़ाया। आपका सम्पर्क व्यापक था। लार्ड पैथिक लारेन्स, महाराजा कश्मीर, दीनबन्धु सी.एफ. ऐन्ड्रयूज, फ्रांसीसी लेखक मोनशायर शेवरिलन, जापान के विद्वान् श्री एकाई फाबागूची, चीन के साहित्यकार लिन यु तांग आदि से उनकी मित्रता थी। स्वामी श्रद्धानन्द, सर जगदीश चन्द्र बसु और बाबू श्याम सुन्दर दास से उनकी घनिष्ठता थी। इतनी महान हस्तियों से सम्बन्ध का प्रभाव यह हुआ कि समाज के कार्यों में धन का सदुपयोग किया। आपने बनारस में ''नागरी प्रचारणी सभा'', कार्मिकल लाइब्रेरी तथा सेन्ट्रल हिन्दु कालेज की स्थापना में हर प्रकार का सहयोग दिया। वंश की उच्च परम्परा को आगे बढ़ाया। बालक भगवानदास ने जब बारह वर्ष की आयु में एन्ट्रेन्स की परीक्षा और 17 वर्ष की उम्र में 1885 में कलकत्ता विश्व-विद्यालय से एम.ए. (दर्शनशास्त्र-विषय) लेकर पास की तो सुनने वाले दांतों तले अंगुली दबा कर आश्चर्य करते थे कि इतनी अल्पायु में इतनी प्रतिभा व कुशाग्र बुद्धि इस बालक में है। संस्कृत, फारसी, उर्दू आदि भाषाओं का अध्ययन निजी रूप से किया।

शिक्षा के बाद भगवान दास ने कर्म भूमि में पदार्पण किया। आपने शुरू-शुरू में आठ वर्ष तक सरकारी नौकरी की। गाजीपुर, कंचन पुर व इलाहाबाद में तहसीलदारी व आगरा और बाराबंकी में डिप्टी कलेक्टर रहे। आपका कार्यक्षेत्र ऐसा था कि उसमें समाज के हर वर्ग से सम्पर्क होता था। इसी अंतराल में आपका परिचय डॉ. एनी बेसेन्ट से हो गया था। नौकरी छोड़ने का कारण पिताजी का निधन होना था। भगवान दास जी का विवाह शिक्षण अवधि के दौरान 15 वर्ष की आयु में ही हो गया था। पिताजी ने धनी व सम्पन्न होते हुए भी उनका विवाह एक साधारण अध्यापक की पुत्री से किया। उनका मत था कि परिवार की गरिमा, बड़प्पन को पैसे की तराजू में नहीं तोला जा सकता बल्कि चरित्र और गुणों से आंका जाता है।

डॉ. भगवान दास ने जहाँ एम.ए. की परीक्षा दर्शन शास्त्र से की थी वहीं ऐसा बाद में सिद्ध हो गया कि यह विषय उनके जीवन में रम गया था। आपने 30 पुस्तकों का सर्जन किया। उनकी अगाध विद्वता के फलस्वरूप 1929 में बनारस हिन्दू विश्व-विद्यालय ने सर्वोच्च डी.लिट. की उपाधि से उनको अलंकृत किया। ''साइंस आफ इमोशंस'' व ''साइंस आफ पीस'' बुद्धिजीवी वर्ग में ये दोनों पुस्तकें विशेष चर्चित रहीं।

डॉ. भगवान दास का जीवन ने (1) धर्म व शिक्षा (2) समाज कल्याण (3) राजनैतिक परिवर्तन के क्षेत्रों में अपना प्रभाव प्रदर्शन किया। डॉ. ऐनी बेसेन्ट थ्योसफी (Theosophy) अर्थात् ''अध्यात्म द्वारा ईश्वर का ज्ञान व आनन्द'' की सक्रिय नेता थी। जो आंदोलन का रूप ले चुका था। उनके अनुसार इसका मुख्य स्त्रोत था भारत का दर्शन शास्त्र। इन विषयों में उद्देश्य एक होने से डॉ. भगवान दास व ऐनी बेसेन्ट सक्रिय कार्यकर्त्ता बन गये। उन्होंने साथ-साथ भारत भ्रमण किया। उसका प्रभाव यह रहा कि वे कहते थे कि शिक्षा में अंग्रेजी में थ्री आर्स (3 Rs.) के स्थान पर चार 'आर' रीडिंग (पढ़ना), राइटिंग (लिखना), अरिथमेटिक (गणित) के साथ रिलिजन (धर्म) भी होना चाहिए)। धर्म चरित्र निर्माण करता है। उच्च चरित्र से देश का उत्थान निर्बाध और निरंतर होता है। प्रत्येक बुद्धिजीवी इनकी पुस्तकें, लेखों और व्याख्यानों से प्रभावित हो चुका था। डॉ. ऐनी बेसेन्ट ने बनारस में रहना शुरू कर दिया था। 1921 में काशी विद्यापीठ की स्थापना होने पर उनको उसका कुलपति नियुक्त किया गया।

डॉ. भगवान दास का महात्मा गांधी से निकट का सम्बन्ध था। महात्मा

गांधी ने हरिजनों के उद्धार के लिए आंदोलन चलाया। उनको मंदिरों में प्रवेश करवाने के लिए कदम उठाये। इससे अंग्रेज साम्राज्य चिन्तित हो उठा। उसने हिन्दू समाज को बंटे हुए रखने के लिए गांधी जी के कार्यों के विरूद्ध प्रचार करना आरम्भ किया। इस प्रबल समस्या के समाधान के लिए गांधीजी ने डॉ. भगवान दास को हिन्दू धार्मिक ग्रंथों में प्राप्त सामग्री से यह सिद्ध करने को कहा कि हरिजनों का मंदिरों में प्रवेश से कोई धार्मिक हानि नहीं। कोई धर्म भ्रष्ट नहीं होगा। जो आपने सामग्री जुटाई वह आज भी समाज सुधार में प्रयोग होती है।

डॉ. भगवान दास 1919 में सहारनपुर में उत्तर प्रदेशीय सामाजिक सम्मेलन के अध्यक्ष थे और 1920 में मुरादाबाद में राजनैतिक सम्मेलन के सभापति थे। 1921 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष रहे। 1923 से 1925 तक बनारस नगरपालिका के चेयरमैन रहे। अपने अनुभवों से वे चाहते थे कि म्युनिसिपल संस्थाएँ सरकार की गुलाम नहीं होनी चाहिए। वे अपने आप में स्वतंत्र व स्वायत्त स्वावलम्बी होनी चाहिए। उनके सम्मुख आयरलैण्ड में सिटी आफ कार्क के मेयर मैकस्विनी का आदर्श रहता था। जिससे अंग्रेजों के अत्याचारों के सामने झुकने के बजाय भूख हड़ताल कर प्राण त्यागना अच्छा समझा था। वह प्रशासन में अत्यंत कुशल थे। जटिल से जटिल समस्या स्वयं ही सुलझा लेते थे। चेयरमैन होने के काल में ही आपने श्रीमद् भागवद्गीता का अनुवाद तैयार किया जिसमें ऐनी बेसेन्ट का सहयोग रहा। राज्य की शक्तियाँ एक स्थान पर केन्द्रित न हो इसलिए वे पंचायत राज के हिमायती थे। चुनाव में मतदाता की आयु 25 वर्ष (पुरूष) व 21 वर्ष (स्त्री) से कम नहीं चाहते थे साथ ही मतदाता की योग्यता को भी सावधानी से देख-परख लेना जरूरी है। वे कहते थे कि चुनाव में उम्मीदवार इतना जन प्रिय होना चाहिए कि उसे प्रचार की आवश्यकता ही न पड़े। उसमें इतनी योग्यता और जनसेवा के प्रति इतनी निष्ठा होनी चाहिए कि जनता स्वयं उसे चुने। आपने इसी कार्यकाल में दाइयों के काम करने में सुधार किया। प्रसव का कार्य गन्दे व फुहड़ तरीके से निम्न जाति की स्त्रियाँ करती थी। उनको शिक्षा दिलवाई और साफ औज़ार दिलवाये जिससे मृत्यु दर में कमी हुई।

कांग्रेस पार्टी महात्मा गांधी के नेतृत्व में समाज सुधार, राजनैतिक स्वतंत्रता के लिए आंदोलनों में लगी हुई थी। 1935 में ब्रिटिश साम्राज्य ने पार्टी को चुनाव के लिए चुनौती देकर उद्देश्य से भटकाने की नीति अपनाई। चुनाव भी राजनैतिक फर्ज़ है इससे विमुख होने को कोई भी सहन नहीं कर सकता। चुनाव

हुए डॉ. भगवान दास विधानसभा के लिए निर्विरोध चुन लिए गये। यहाँ का वातावरण अनुकूल न होते हुए भी उन्होंने कर्तव्य ईमानदारी से निभाया। डॉ. भगवानदास ने मुस्लिम नेताओं को बांटने में ब्रिटिश साम्राज्य की भूमिका को नजदीक से देखा और परखा भी था। 1 सितम्बर 1923 का विवरण देते हुए उन्होंने बताया ''महात्मा गांधी दिल्ली में डॉ. अंसारी के घर 21 दिन का उपवास कर रहे थे। उस समय पिछले कुछ महिनों में हुए सांप्रदायिक दंगों की पुनरावृत्ति को रोकने के उपाय ढूंढने के लिए विशेष एकता सम्मेलन का आयोजन किया था उसके अंतर्गत कुछ थोड़े से हिन्दू और मुस्लिम नेताओं की बैठक हुई थी। जमैयत-उल्मा के अध्यक्ष मौलाना किफायत उल्ला और मंत्री मौलाना सइद अहमद तथा दो-तीन अन्य व्यक्ति मुसलमानों तथा महामना पं. मदन मोहन मालवीय जी, पंडित दीन दयालु जी, स्वामी श्रद्धानन्द और कुछ अन्य व्यक्ति हिन्दुओं का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। संयोगवश मुझे भी निमंत्रित किया गया था। वार्तालाप के क्रम में एक मुस्लिम नेता ने कहा कि हिन्दू सदा से आक्रमणकारी (जारीहाना) रहे हैं और मुसलमान तो सदा आत्मरक्षक (दफियाना) हैं। मैंने प्रतिक्षा की कि कोई हिन्दू नेता इस बात का उत्तर दे, किन्तु किसी ने कुछ नहीं कहा। मुझे अचंभा हुआ। अन्य किसी उपाय के अभाव में मैंने सोचा कि मैं ही यह काम करूं। मैंने कहा– 'न तो मैंने कभी सुना है और न किसी इतिहास में पढ़ा ही है कि हिन्दुओं ने अरब और फारस पर आक्रमण किया, यह अवश्य पढ़ा है कि अरब के मुसलमानों ने सन् 700 ई. में सिंध पर पहली बार आक्रमण किया और बाद में महमूद गजनवी, शहाबुद्दीन तथा अन्य आक्रमणकारी आये। साम्प्रदायिक दंगों के बारे में भी यह सभी जानते हैं कि मुसलमान गुण्डे ही उन्हें आरम्भ करते हैं। हिन्दुओं द्वारा दंगों का आरम्भ केवल गोवध जैसे अवसरों पर ही होता है और वह भी जब कि ये गोवध सार्वजनिक स्थानों पर खुली चुनौती के साथ होते हैं। यह भली भांति स्पष्ट हो गया है कि मस्जिदों के सामने बाजा बजने पर होने वाले दंगे इसी आशय से उनमें छुपे मुस्लिम गुण्डों द्वारा ही प्रारम्भ होते हैं।'' दूसरी बार उनका सामना 1925 ई. में एक बैठक में जिसमें मियां जिन्ना अली बन्धु, हकीम अजमल खाँ व डॉ. अंसारी मौजूद थे वार्तालाप का सार वही होता है और उसका कोई उत्तर नही होता था। डॉ. भगवानदास ने प्रत्येक स्थिति का भी विश्लेषण पारखी नज़र से किया। महात्मा गांधी की मृत्यु के पश्चात् जब राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ पर प्रतिबन्ध लगाया गया था तो उन्होंने आलेखों के द्वारा यह सिद्ध कर दिखाया कि यह संस्था देशभक्त, कर्तव्य निष्ठा व सच्ची समाज

सेवक है। देश विभाजन के समय लोगों की जान बचाने में अमूल्य सहयोग दिया था। राष्ट्र के नेताओं को षडयंत्र द्वारा मारने की साजिश को नाकाम करने में यह संगठन सफल रहा था।

समाज और देश सेवा एक नशा होता है। डॉ. भगवानदास एक धनी व सम्पन्न परिवार से थे। उनके पास इतना पैसा था कि भोग विलास की हर वस्तु पाना सहज था परन्तु भगवान दास जी ने देश सेवा व समाज सेवा क्यों अपनाई?इसके लिए आपको 1921 में महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन में भाग लेने के कारण एक वर्ष के कारावास का दण्ड मिला। इस प्रकार के कष्ट उनके लिए सहन करना कठिन नहीं था। परन्तु जब उनके पौत्र और बहु का देहान्त हुआ तो आप सदमा सहन नहीं कर सके। पौत्र की बीमारी के दिनों में ही सब कुछ छोड़ दिया। वैसे तो 57 वर्ष की आयु में कामों से हाथ खींच लिया था। मिर्जापुर जिले के चुनार में अपना घर बनवाकर शांतिपूर्वक रहना शुरू कर दिया था। परन्तु इस पारिवारिक हानि ने उनको चारपाई पर लगा दिया जिससे दिल का दौरा पड़ा था। आप कॉफी पीने के शौकीन थे। उनको उनके मित्र श्री टण्डन जी ने अंतिम दिनों में भी कॉफी पीते हुए पाया था। उनका देहावसान 18 सितम्बर 1958 की रात को आठ बजे हुआ। विरासत में डॉ. साहिब ग्रन्थों को आगे की पीढ़ी को लाभ पहुंचाने के लिए छोड़ गये। इनके साइंस आफ इमोशन ओर साइंस आफ पीस जैसे महान ग्रंथों के अतिरिक्त मानवधर्म सार, प्राणवाद, समन्वय पुरूषार्थ, विविधार्थ, बुद्धिवाद बनाम शास्त्रवाद, 'लाज आफ मनु, 'कृष्ण ऐज़ आई सी हिम, ''साइंस आफ सेल्फ, साइंस आफ दी सेक्रेट वर्ल्ड आदि पुस्तकें छोड़ गये। इसी क्रम में डॉ. भगवादास जी की कमान उनके ज्येष्ट पुत्र श्री प्रकाश जी ने संभाली। उनकी राष्ट्र भक्ति और सेवा निष्ठा अपने पिताजी से किसी प्रकार भी कम नहीं है। उन्होंने पाकिस्तान का उच्चायुक्त रहते हुए देश का मान बढ़ाया। वे बाद में राज्यपाल भी रहे। दूसरे सुपुत्र श्री चन्द्रभान ने प्रजा की सेवा करते हुए उत्तर प्रदेश की विधान सभा के स्पीकर के पद को सुशोभित किया। उन दोनों ने पिता श्री डॉ. भगवान दास की भाँति ही अग्रवाल समाज के बहुमूल्य रत्न होते हुए, देश के, समाज के हर वर्ग के रत्न हो गये। भगवान से प्रार्थना है कि अग्रवाल समाज को ऐसे रत्न मिलते रहे जिन पर हमें गर्व हो।

भारत सरकार के डाक विभाग ने उनके सम्मान में 20 पैसे मूल्य की 20-01-1969 को 30 लाख टिकटें जारी की थी।

▲▲▲

साहित्य सृष्टा एवं कला मर्मज्ञ

अग्रज राय कृष्णदास

साहित्य सृष्टा एवं कला मर्मज्ञ-अग्रज राय कृष्णदास

अग्रज राय कृष्ण दास का जन्म 17 नवम्बर 1892 ई. में वाराणसी में हुआ था। इनके पिताजी का नाम राय प्रहलाद्राय था। यदि उनके जन्म और पूर्वजों के विषय में अध्ययन न किया जाये तो रायकृष्ण दास के बारे में जानकारी अधूरी होगी। 'राय' शब्द उनके नाम का भाग नहीं है बल्कि उपाधि है जिसे पीढ़ी के हर व्यक्ति ने इसका प्रयोग किया है। इस परिवार की निकासी बिहार के पटना शहर से है। यहाँ पर उनके पूर्वज राजा ख्यालीराम को शाह आलम द्वितीय ने बिहार क्षेत्र का नायब सुबेदार नियुक्त किया था। इस मुगल सम्राट ने एक सन्धि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ की थी। इसके अनुसार कम्पनी को राजस्व वसूली का अधिकार मिल गया था। मुगल खजाने में इस राजस्व का कुछ प्रतिशत कर के रूप में जाता था। उस मुगल सम्राट ने उनकी सेवाओं से प्रसन्न होकर उन्हें पाँच हजारी मनसबदारी भेंट की और वंशगत 'राय' की उपाधि दी। तब से हर पीढ़ी में इसका प्रयोग आरम्भ हुआ। राजा ख्याली राम से पूर्व भी इनके पिता व दादाजी का मुगल सम्राटों से सम्बन्ध रहा। वे उनसे व्यवसाय सम्बन्ध रखते थे। जरूरत पड़ने पर कर्ज आदि भी देते थे। एक लेखक ने परिवार की विपुलता और सम्पत्ति के विषय में लिखा है ''उन्हीं राजा ख्यालीराम के सुपुत्र राय बाल गोविन्द के विषय में यह निश्चित जानकारी है कि वे योग की कठिन साधना करते थे। 1934 वाले बिहार के भूकम्प में क्षतिग्रस्त इस वंश के पटना नगर में स्थित प्रसाद में एक ओर राजसी वैभव के कक्ष दीवाने आम और दीवाने खास एवं सावन-भादों हम्माम आदि थे तो उनकी साधना के लिए निर्मित कुंड भी था। वे माघ और पूस की ठंडी रातों में जल में रात्रि भर खड़े होकर जहाँ योग की साधना करते, वहीं दूसरी ओर जेठ-बैसाख माह की गर्मी में उस कुंड को तपवाकर अग्नि प्रज्ज्वलित कर, घंटों खड़े होकर प्रचंड सूर्य की ओर देखा करते थे। निदान, जब क्रमशः मुगल साम्राज्य क्षीण हो रहा था तब नायब दीवानी के अधिकार भी नहीं रह गये थे परन्तु राजसी वैभव अपनी चरम सीमा पर था। इस काल में इस वंश ने सुरुचि का जो बिन्दु प्राप्त कर लिया था, वह राय कृष्णदास तक वर्तमान था।''

राय बालगोविन्द के चार पुत्रों में राजा पट्टनीमल ने पटना शहर सभी ठाट बाट के साथ छोड़ा और वहाँ से केवल कलमदान कटि में बांधकर और पत्नी जो केवल चुनरी पहने थी काशी में आ गये। यहाँ पर भी लक्ष्मी ने साथ दिया और विपुल सम्पत्ति-सम्पदा अर्जित की। उन्होंने धन का समाज कल्याण में प्रयोग करने की अग्रवाल समाज की परम्परा आगे बढ़ाते हुए कई दुष्कर कार्य किये। उत्तर प्रदेश

और बिहार राज्य की सीमा पर स्थित कर्मनाशा नदी का पुल जिस पर आज भी ग्रांट ट्रंक रोड जाती है वह उन्हीं के द्वारा निर्मित है। हरिद्वार में 'कुशावर्त' घाट की ठीक-ठीक पहचान कराई और वहाँ गंगा का प्रखर वेग सह सकने वाले घाट का निर्माण कराया और धर्मशाला बनवायी। कांगड़ा के निकट ज्वालाजी तीर्थ पर कुँआ निर्माण करवाया जिससे तीर्थयात्रियों को पानी की कठिनाई से राहत मिली। राजा पट्टनीमल की ईमानदारी, उदारता, सहिष्णुता की अनेक कहानियाँ उत्तर भारत में प्रचलित हुई। उन्हीं पट्टनीमल के पौत्र नरसिंह दास राय कृष्णदास के दादा जी थे। राय नरसिंहदास विलासी हो गये और परिवार से अलग रहने लगे थे। उनके पुत्र और राय कृष्णदास के पिताजी ने शैशवास्था में एकाकी पाया। वे अपने नाना के यहाँ रहने लगे। जो भारतेंदू बाबू हरिश्चन्द्र के दादा जी थे। इस प्रकार भारतेन्दु बाबू हरिशचन्द्र, राय कृष्णदास के मामा के पुत्र थे। भारतेन्दु भवन में भारतेन्दु, उसके भाई गोकुलचन्द, प्रहलाददास व रायकृष्ण दास साथ-साथ रहते थे। उनकी शिक्षा साथ हुई और रुचि में भी समानता थी। राय कृष्णदास का जन्म तब हुआ था, जब उनके पिताजी की आयु 35 वर्ष के लगभग थी। उनका जन्म मनोतियों, ताजीब और मन्त्र जाप के बाद हुआ। गाजीपुर के परमहंस त्रिकालदर्शी थे। उन्होंने आशीर्वाद दिया जो सार्थक हुआ। राय कृष्णदास मलेरिया से पीड़ित रहते थे। जिसका स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ा। शरीर दुर्बल रहा इसलिए परिवार वालों ने शिक्षा पर जोर नहीं दिया। निश्चित शिक्षा प्रणाली वाली कक्षाएं और उपाधि प्राप्त नहीं कर पाये। ज्ञान की तीव्र लालसा उनमें थी। इसलिए निजि रूप से शिक्षा का प्रबन्ध किया गया। पं. हरिकृष्ण थत्ते अंग्रेजी और संस्कृत पढ़ाते थे। मास्टर जानदास एक भारतीय ईसाई थे वे भी उनको पढ़ाने के लिए घर पर आते थे। बचपन में हर बालक का कोई आदर्श होता है जिनसे जीवन की उच्चता प्राप्त करने की प्रेरणा मिलती है। बाबू गोविन्दशाह ऐने बेसेन्ट के दाहिने हाथ थे। उन्होंने एक बार राय कृष्णदास को कहा "अंग्रेज अफसरों से बराबर के स्तर पर मिला करो, देखो जैसे मैं मिला करता हूँ।" इस वाक्य का इन पर जीवन-पर्यन्त प्रभाव रहा। बाबू शिवप्रसाद दूसरे व्यक्ति थे जिनके निस्पृहता, मुक्तहस्तता, आचार शुद्धता, राष्ट्रप्रेम, हिन्दी प्रेम आदि गुण राय कृष्णदास ने अपनाये। माता और पिताजी का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। उनके पिताजी अंग्रेजी, अरबी-फारसी एवं संस्कृत के विद्वान थे। उनकी अच्छाइयों के उदाहरण दिये जाते थे। राय नरसिंह दास विलासिता के गर्त में डुबा हुआ था। उनका प्रहलादराय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। यह देखकर बुजुर्ग कहते-"(राय परिवार रूपी) इस भांग के जंगल में (राय प्रहलाद दास के समान) यह तुलसी का पौधा कहाँ से उग आया है।" माँ चम्पा रानी की छत्रछाया बेटे को अच्छे मार्ग पर ले गई। इलाहाबाद इनका पीहर था। यहाँ पर माताजी के साथ राय कृष्णदास आते थे। जब वे केवल नौ वर्ष के थे तो उनकी मृत्यु हो गयी थी। इस शहर का दारागंज मुहल्ला उनके लिए काशी जैसा प्रिय था। यहाँ भी ब्रिटिश कालीन वैभव के साथ-साथ समाज करवट ले रहा था। यह शहर दो विराट व्यक्तित्वों का निवास स्थान था। पं.

मदनमोहन मालवीय के पिताजी चम्पारानी के घर में कथावाचक थे। इस प्रकार उनसे पारिवारिक प्रगाढ़ सम्बन्ध होना स्वाभाविक था। पं. मोतीलाल नेहरू प्रसिद्ध वकील थे। राय प्रहलादराय ने अपने पिताजी के दुर्व्यसन के कारण न्यायालय का सहारा लेना पड़ा। इस कार्यों में नेहरू जी ने उनकी पैरवी की थी। आना-जाना अधिक होने से सम्बन्ध प्रगाढ़ हो गये। इसी गंगा-जमुनी वातावरण में रायकृष्ण दास का पहले बारह वर्ष विकास हुआ परन्तु सहसा उनके पिताजी चल बसे। अब रायकृष्ण दास घर में बड़े हो गये, तब पहला पाठ पढ़ा। "अपनी मर्यादा की रक्षा के लिए गंभीर बनो।" चाचा के पुत्र राय श्यामकृष्ण का उन पर प्रभाव पड़ा। सुरुचि-सम्पन्नता, खाने पीने में नई-नई उद्भावनाएं उनसे प्राप्त की। उनको छोटी आयु से गहन अध्ययन की आदत हो गई। उसके साथ लिखना आरम्भ किया। चौबीस वर्ष की आयु में आपने 'साधना' 'छाया पथ' और 'प्रबाल' आदि रचनाओं को प्रकाशित किया। वे द्विवेदी युग की देन थे और भारतेन्दु युग से प्रभावित थे। उनके साहित्य सर्जन का काल वहाँ से आरम्भ होता है जब द्विवेदी युग अपने पूरे वैभव पर था। रायकृष्ण दास ने उस अवधि में गद्यगीत साहित्य में जोड़ा जिससे उनको अपूर्व यश प्राप्त हुआ। वियोगी हरि के शब्दों में 'वे गद्यगीत के प्रथम आचार्य थे।' 'ब्रजरज' 'कविता संग्रह', 'अनाख्या', 'सुधांशु', आंखों की थाह-कहानी संग्रह, 'भारतीय मूर्तिकला', 'भारत की चित्रकला', 'भारतीय चित्र चर्चा', कला सम्बन्धी कृतियाँ थी। 1893 ई. में काशी में नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई थी। उसका हिन्दी के उत्थान में विशेष स्थान रहा है उसके तत्त्वावधान में उन्होंने बाबू श्यामसुन्दर के सहयोग से 'द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ' निकाला। यह ग्रन्थ हिन्दी का गौरव और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को हिन्दी जगत की विनम्र श्रद्धांजलि थी। राय साहब के रामघाट स्थित भवन के गंगातट वाले कमरे में सदा साहित्यकारों का समागम होता रहता था। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्ता, महाकवि जयशंकर प्रसाद, मुंशी अजमेरी जी, श्री सियाराम शरण गुप्त, पं. केदारनाथ पाठक, पं. विनोद शंकर व्यास, श्री शिवपूजन सहाय, पं. केशवप्रसाद मिश्र आदि वरिष्ठ साहित्यकारों का आगमन और साहित्य चर्चा प्राय: नित्य का कार्यक्रम था। उनको काशी की प्रसिद्ध मिठाइयाँ व वैष्णव भोजन कराया जाता था। नई पीढ़ी के साहित्यकार शान्तिप्रिय द्विवेदी को राय साहिब ने प्रोत्साहित किया था। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय स्थित आपके सीता निवास में कलकत्ता के साहित्य-संस्कृति प्रेमी सीताराम सेक्सरिया, पं. श्री नारायण द्विवेदी, कविवर दिनकर, श्री सच्चिदानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' आदि आते ओर ठहरते भी थे। श्रीमति महादेवी वर्मा कुछ महीने काशी पधारी तो यहीं पर ठहरी थी। ये साहित्यकार आपस में आत्मीय और स्पष्टवादी थे सभी एक दूसरे को घरेलू संबोधनों से पुकारते थे। मैथलीशरण गुप्त को 'दद्दा' सियारामशरण को 'बापू' और रायकृष्ण दास को 'सरकार जी' कहा जाता था। ये सम्बोधन विचार-विमर्श में टकराव की स्थिति में आत्मीयता बनाये रखते थे।

एक ओर उन्होंने अपने अध्ययन को विस्तृत और व्यापक रखने में कोई कसर नहीं रखी, दूसरी ओर अन्य कला-विद्वानों का अनुपयुक्त तथ्य उनको दिखाई दिया तो उसका उन्होंने प्रतिकार भी किया। एक विदेशी कला-विद् पर्सी ब्राउन (Percy Brown) ने अपनी पुस्तक 'दि हैरिटेज ऑफ इण्डिया-इण्डियन पैन्टिग (The Heritage of India Indian Paintings) में भारतीय चित्रकला को बौद्ध, हिन्दू तथा मुस्लिम वर्ग में बांटा है, जिसका समर्थन भारतीय विद्वानों ने भी किया परन्तु रायकृष्ण दास ने कहा- ''अजन्ता की चित्रकला को या प्राचीन भारत की मूर्तिकला को कितने ही लोग, बौद्ध कला कहा करते हैं। यह सरासर भूल है। भारत में ब्राह्मण, बौद्ध या जैनकला जैसी कोई वस्तु कभी नहीं रही। प्राचीन कला पर यदि कोई प्रभाव है तो राजनीतिक कालों का है। हाँ, अजन्ता के अनेक चित्रों के अनेक विषय अवश्य बौद्ध है।'' यह प्रतिकार रायकृष्ण ने अपने ग्रन्थ 'भारत की चित्रकला' में दिया। यह और दूसरा ग्रन्थ 'भारती मूर्तिकला' कलाप्रेमियों के लिए महत्वपूर्ण पुस्तक है। रायकृष्ण दास (सरकार जी) ने कलाभवन की स्थापना की। 1910 में रायकृष्णदास की अवनीन्द्रनाथ ठाकुर से भेट हुई। उनसे आपको भारतीय कला संग्रह की प्रेरणा मिली। 1910 ई. में प्रसिद्ध दार्शनिक डॉ. भगवानदास के निर्देश तथा सीताराम शाह और शिवेन्द्रनाथ बसु के सहयोग से भारत कला परिषद् बनी। इसके चार उद्देश्य:संग्रहालय, संगीत विद्यालय, चित्रकला विद्यालय और कला प्रकाश निश्चित किये गये। इस परिषद के आजीवन सभापति गुरुदेव कवीन्द्र रवीन्द्र थे। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने निर्देश दिया कि संग्रहालय के कार्य को प्रमुखता दी जाय। इस तरह कला भवन बना और आरम्भ में यह नागरी प्रचारिणी सभा के भवन में स्थित था। 1950 में यह काशी विश्वविद्यालय में स्थानान्तरित हुआ। एक विशाल भवन का निर्माण हुआ जिसका उद्घाटन देश के प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने 13 जनवरी 1962 के दिन किया। 'भारतकला भवन' की उन्नति और विकास में सारा काम रायकृष्ण दास का रहा। उसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए बताया कि इसमें गुप्त सम्राटों की अस्सी स्वर्ण मुद्राएं हैं जिनको भरतपुर राज्य से चालीस हजार रूपये में प्राप्त किया गया था।

15वीं शती की तीन फुट ऊँची नटराज की मूर्ति हैं। भारत कला भवन में ''राजघाट विभाग'' है। जिसमें राजघाट किले की भूमि की खुदाई के समय प्राप्त कलात्मक वस्तुएं रखी गई हैं जो अधिकतर गुप्त कालीन हैं। मोहन जोदड़ों से प्राप्त सिन्धु घाटी की वस्तुएं भारत सरकार के पुरातत्व विभाग ने उसे दी। मौर्य कालीन मूर्तिखण्ड, शूंग, कुषाण-कालीन मूर्तियाँ भरहुत की यक्षिणी और प्रसाधिका तो भारतीय कला में गिने चुने रत्नों में हैं। इसी काल की कार्तिकेय की मूर्ति, सुन्दर, उदात्त एवं ओजस्वी है।

भारत कला भवन में जहाँ कलात्मक मूतियों, वस्तुओं का संग्रह है वही साहित्य कक्ष में महान साहित्यकारों की हस्तलिखित पाण्डुलियाँ सुरक्षित रखी गई

हैं। जिनमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, महाकवि जय शंकर प्रसाद, प्रेमचन्द, कविवर सुमित्रानन्दन पन्त, दिनकर, महादेवी प्रमुख है। पत्रकारिता की भी अमूल्य सामग्री यहाँ सुरक्षित है। जिनमें दैनिक हिन्दोस्तान, भारतमित्र, हिन्दी बंगवासी, सरस्वती, हंस, जागरण के आरम्भिक अंक संग्रहित है। भारतेन्दु की व्यक्तिगत दैनिक व्यवहार की वस्तुएँ, पुस्तकें, कागज पत्रों, रचनाओं और उनकी प्रेमिकाओं के चित्र यहाँ पर है। मल्लिका भारतेन्दु की प्रेमिका थी। मल्लिका का भारतेन्दु के साथ चित्र तथा मल्लिका के पत्र की मूलप्रति भी इस संग्रहालय में सुरक्षित हैं। रायकृष्ण दास ने बहुत सी कलात्मक मूर्तियाँ अपनी पारखी निगाहों से पहचान कर प्राप्त की थी। जिनके सम्बन्ध में एक संस्मरण ठाकुर प्रसाद सिंह ने बताया कि वे भगवती शरणसिंह के साथ उनसे मिलने आये। उनसे ठाकुर का मिलना काफी समय पूर्व हुआ था। भगवती शरणसिंह ने ठाकुर प्रसाद सिंह का परिचय देना चाहा। ''राय कृष्णदास मुस्कराये और मेरी ओर घूमकर बोले, ''ठाकुर प्रसाद सिंह जी, आपके घर में वह पत्थर की नाँद अब भी है न, जिसमें गायें सानी खाती हैं?''मैंने कहा, 'नाँद तो है पर गायें नहीं हैं।'' वे हँसे, तब दो थी। उनमें से एक तुम्हारे बाबा से माँगकर कलाभवन में ले आया था। वस्तुत: वे नांदे नहीं थी, मध्यकालीन मंदिरों के स्तम्भों के शीर्ष-दल थी। राजपूतों के घर में उनका और उपयोग ही क्या हो सकता है'' इस रोचक प्रसंग से सिद्ध होता है कि उनमें साधारण व्यक्तियों से अलग मूर्तिकला का मूल्य और पारखी व्यक्ति की पकड़ थी।

दूसरा संस्मरण डॉ. गौरीशंकर गुप्त ने बताया जिसमें रायकृष्ण दास ने किस प्रकार नटराज की मूर्ति मद्रास स्थित पुरातत्त्व संग्रहालय से प्राप्त की थी। श्री प्रकाश जी तामिलनाडु प्रान्त के राज्यपाल थे आपने उस सम्पर्क का प्रयोग करते हुए उनको एक मूर्ति भारतकला भवन के लिए देने का आग्रह किया। 'पुरातत्व संग्रहालय मूर्ति देने को तैयार हो गया, किन्तु निर्देशक महोदय ने उस्ताद से उस्तादी की। उन्होंने सर्वोत्कृष्ट मूर्ति का मूल्य सबसे कम रखा, ताकि राय साहब अधिक मूल्य वाली मूर्ति को अच्छी समझकर ले लें और वह रह जाये। किन्तु राय कृष्णदास ने सबसे कम मूल्यवाली मूर्ति का चयन कर दिखा दिया कि उस्ताद से उस्तादी नहीं चलती।'' स्वयं निर्देशक महोदय ने इस तथ्य का उद्घाटन मूति-समर्पण के समय करते हुए राय साहब की पैनी दृष्टि की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की थी।

कोई व्यक्ति अपने लाभ के लिए किसी की सादगी और दक्षता का दुरुपयोग कैसे करता है कु. यशोधरा अग्रवाल ने अपने संस्मरण में इस प्रकार बताया है, ''सन् 1948-49 की बात है। गौरी शंकर सक्सेना नामक एक सेवानिवृत्त सरकारी अफसर थे वे फारसी भाषा के विद्वान थे। वे शक्ल-सूरत और पहरावे से मुस्लिम प्रतीत होते थे। उन्होंने कला भवन को अनेक बहुमूल्य सामग्रियाँ दी थी। जिनमें जहाँआरा की बयाज, गुलिस्ताँ, उमर खैयाम और अनेक मुगल फरमान उल्लेखनीय

है। सक्सेना जी राय साहब के पास आए और कहा कि लखनऊ में एक पागल नवाब है जिसके पास एक चित्र है, आप उसे देखकर बताएँ कि वह हम्जा है या नहीं?साथ ही उन्होंने यह शर्त रखी कि चूँकि वह नवाब पागल और बहरा है इसलिए उनसे आपको बोलने की जरूरत नहीं है। राय साहब अपने सुपुत्र राय आनन्द कृष्ण जी सहित उन नवाब की हवेलीनुमा कोठी में पहुँचे। नवाब ने चित्र दिखाया जो 'हाम्जा' ही था। चूँकि शर्त के अनुसार नवाब से कुछ भी बोलने की मनाही थी इसलिए बाहर आकर राय साहब ने सक्सेना जी से कहा कि यह हम्जा ही हैं। यहाँ यह बता देना आवश्यक प्रतीत होता है कि उसे प्राप्त करने से पूर्व राय साहब और सक्सेना जी में यह तय हुआ था कि अगर चित्र हम्जा हुआ तो उसको सक्सेना जी थे कहे दाम पर राय साहब ही खरीदेंगे। इधर यह परिस्थिति थी कि सक्सेना साहब मात्र राय साहब से सिर्फ चित्र की पहचान करवाकर बम्बई के डीलर को अधिक मूल्य पर बेचना चाहते थे, अतएव सक्सेना जी शर्त के विपरीत होकर आनाकानी करने लगे। इस पर राय साहब ने क्रोध प्रकट किया और धौंस देने की स्थिति तक आ गये। अन्ततः उक्त चित्र उन दिनों 2300/= रूपयों में राय साहब ने क्रय कर लिया। बाद को पता चला कि वह नवाब नहीं था और न ही पागल था, वस्तुतः वह एक डीलर था, जिसने 'हम्जा' की सही पहचान कराने के लिए ही राय साहब को बुलवाया था। यह चित्र आज भी कलाभवन की सम्पत्ति बना हुआ अपना यश बिखेर रहा है।''

रायकृष्ण दास की पारखी नजर इतनी सटीक थी कि उनके निश्चित फैसले को कोई चुनौती नहीं दे पाता था। अच्छे से अच्छे विशेषज्ञ को आश्चर्य में डाल देते थे। सौ. स्वास्ति चौधरी ने एक संस्मरण में बताया, ''कला भवन के लिए उन दिनों अनेक व्यापारी तरह-तरह की कला वस्तुएँ लेकर आते थे। उनमें एक इलाहाबाद के वर्मा जी भी थे। वे अक्सर छोटे-मोटे गहने लाया करते जो पुराने होने के साथ-साथ कुछ सस्ते होते थे। उनसे दादा जी (राय कृष्णदास)ने एक अंगूठी का हीरा लाने को कहा था। दादाजी अस्सी पार कर चुके थे। फिर भी अपनी नंगी आँखों से हीरे के गुण दोष पहचान लेते थे। एक बार वर्मा जी हीरा लाये। दादा जी को निर्दोष और आकर्षक लगा पर दाम प्रायः ड्यौढ़ा था। बैठक में बड़ी मामूली-सी रोशनी होते हुए भी दादाजी उसे बार-बार देख रहे थे और उँगलियों पर नचा रहे थे और बात करते जा रहे थे। लोग चकित थे कि क्या हो रहा है। फिर सहसा बोले कि दाम करीब आधा होना चाहिए क्योंकि इसमें एक कमी है। वर्मा जी अवाक् रह गये। उन्होंने कहा कि इसके एक पहल के ऊपर की पर्त उचड़ गई है। बस वर्मा जी पैरों पर गिर गए। उन्होंने कहा बात तो सही है लेकिन जिसे बड़े-बड़े जौहरी नहीं परख सके, उसे वह भी यन्त्रों के बिना, आपने कैसे जाना?दादाजी ने कहा कि मैं इसकी सोलह या बत्तीस को बार-बार घुमाकर देख रहा था तो एक तरफ इसकी कांति में फर्क था। फिर मैंने उस पर उँगली फेरकर देखा तो वहाँ रूखापन था। ऐसी थी'' उनकी पारखी नजर।

श्री रायकृष्ण की संवेदना उत्कृष्ट एवं सूक्ष्म थी। भोजन में किन-किन द्रव्यों का किन मसालों ओर सुगन्धों का किस अनुपात में परिपाक हुआ है वह चखते ही बता सकते थे। मसालों आदि की तो वे गंध मात्र से ही जानकारी दे सकते थे। वस्त्रों की तमाम कोटियों की सारी बारीकियों और खूबियों की उन्हें परख थी। रूपाकृतियों के सौन्दर्य की विशेषताओं और कमजोरियों के तो वह विशेषज्ञ थे। उर्मिला आनन्द कृष्णा, राय आनन्द कृष्ण की पत्नी और राय कृष्णदास की पुत्रवधु थी। वे उनको प्यार में 'सनीबहु' पुकारते थे वे संस्मरण में बताती हैं कि 'एक बार जल्दी के कारण रात में सब्जी काटकर फ्रिज में रख दी और दूसरे दिन राँधकर खिलाई। खाने के बाद कहने लगे कि सब तो ठीक था पर कटी पहले दिन की, बासी थी। जबकि इसका उन्हें जरा भी पता न था। इसी प्रकार वे यह जान जाते कि चार दिन पहले सिल पर क्या पिसा था जबकि सिल कई बार धुल चुकी होती।'' खीर को तैयार करने के कितने ही नुस्खे उनके पास थे और उनको पकाने की तरकीबें भी बता दिया करते थे। उनकी स्मरण शक्ति गजब की थी। एक बार एक जानकार उनके पास आये और अपना परिचय देने लगे। रायकृष्ण दास ने उनको बताया कि वे उनसे पहले भी मिल चुके हैं जब वे पहली बार आये थे तो उन्होंने अचकन पहनी हुई थी, और उसमें इस आकार प्रकार के बटन लगे हुए थे। यह सुनकर वह अपने विस्मय को सीमा में नहीं रख सका। रायकृष्ण दास जी को 1969 में पक्षाघात हुआ। प्रारम्भिक दिनों में कुछ असहाय से थे। उनका डाक्टर पर पूर्ण विश्वास था उनके कहने से उस स्थिति में स्वयं को स्वस्थ समझा। 1970 में भारत कला भवन ने पचास वर्ष पूरे किये। उस उत्सव को उन्होंने पूरे उत्साह से उसी बिगड़ी स्वास्थ्य स्थिति में आयोजित किया और उसमें अप्रत्याशित सफलता मिली। 1970 से 1980 के वर्ष उनके जीवन में तटस्था का काल है। उसमें भी जयशंकर प्रसाद पर संस्मरण लिखे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनका युग पर लेख माला तैयार की। रायकृष्ण दास कभी थके नहीं और परिवार में सरल भाव से रहते रहे। उनकी मृत्यु 21 जुलाई 1980 को हुई। उस दिन कला मर्मज्ञ और साहित्य का पुरोधा इस धरा ने चला गया। अग्रवाल समाज को इस महान सपूत पर गर्व है। इन्होंने इस मिथक को झुठला दिया कि अग्रवाल केवल धनार्जन के लिए जीते हैं और मृत्यु पर अपार सम्पत्ति छोड़कर जाते हैं। रायकृष्ण दास ऐसे अग्रज थे जिन्होंने कलापूर्ति की प्राप्ति के लिए व्यक्तिगत सोना-चांदी आभूषण आदि को भी बेच दिया। अन्त में वे सभी वस्तुएं अपार कीमत और अनगिनत पैसों की राष्ट्र को भारत कला मन्दिर के माध्यम से समर्पित कर गये।

▲▲▲

कविवर–जय शंकर प्रसाद

कविवर–जय शंकर प्रसाद

जय शंकर प्रसाद का जन्म माघ शुक्ला दशमी, सम्वत् 1946 (सन् 1889) को उत्तर प्रदेश राज्य के वाराणसी नगर में हुआ। नगर का वह स्थान गोवर्धन सराय मुहल्ला कहलाता था। उनके पिताजी का नाम देवी प्रसाद साहु और माता का नाम मुन्नी देवी, पितामह का नाम शिवरतन साहु और वे कन्या कुब्ज वैश्य थे। उनके पूर्वजों का सैदपुर में चीनी का बहुत बडा कारोबार था। कहा जाता है कि चीनी से लदी कई नावें गंगा जी में डूब जाने के कारण भारी नुकसान उठाना पड़ा। फलत: सैदपुर छोड़कर बनारस आकर रहने लगे। आरम्भ में हौज कटोरा में किराये का मकान लेकर रहे और वही तम्बाकू–सूरती की छोटी सी दुकान खोली। यह काम चल निकला और इसका विस्तार करके 1913 ई. में गंगा सप्तमी के दिन पुरानी कोतवाली के पीछे की गली नारियल बाजार में मै. गणपत साहु शिवरतन साहु नाम से फर्म स्थापित की। फर्म के नाम में शिवरतन साहु जय शंकर प्रसाद के पितामह और गणपत साहू प्रपितामह का नाम है। जय शंकर का जन्म बड़ी पूजा और मनौतियों के बाद हुआ। घर में उनको खाँडेराव के नाम से पुकारते थे क्योकि उनका जन्म शिवजी की आराधना के बाद हुआ था इसलिए उनका नामकरण भी वैद्यनाथ धाम (झारखंड) में हुआ और प्यार से खांडेराव पुकारे जाने लगे।

पूर्वजों का सुरती व्यससाय बहुत अच्छा चल पडा था उनकी सुरती "सुघँनी साहु" के नाम से विख्यात हुई और इसी नाम से देश के कोने कोने में बिकने लगी थी। सुघँनी साहु नाम पड़ने की कहानी है। कहते है शिवरतन साहु की दादी बन्दी माई के पूजन पर अपने पौत्र को लेकर बैठी थी उस समय उसमें इतनी आत्मीयता और ममता जागी की वह उसे वक्षस्थल से लगाकर उसका सिर सुघँने लगी। उपस्थित लोगों को वह दृश्य अजीब लगा और तालियाँ बजाकर प्रसन्नता से समवेत स्वर में "सुघँनी माँ" कहने लगें। परिवार ने इस अकस्मात् होनी को देवी का प्रशाद माना और उनकी सुघँनी माँ के शब्दों को व्यापार में चूर्ण का नाम भी यही सुघंनी चूर्ण रखा जो बहुत लोक प्रिय होकर वरदान सिद्ध हुआ। व्यापार ने दिन दो गुणी और रात चौगुणी उन्नति की । धन दौलत् और रूपये पैसे की बारिस होने लगी थी। उस धन दौलत से उन्होने गोपी नामक वणिक से गोवर्धन सराय में जमीन खरीदी और भवन का निर्माण करवाया। बाद में भगवान सदाशिव का मंदिर बनवाया। साथ की परिवार का गौरवशाली और वैभवशाली काल आरम्भ हो गया। इस परिवार का चलन उच्च स्तर का हो गया। घोड़ा–बग्गी जो शान की बात थी उसको रखा गया। बगीचे की एक कोठरी में एक व्यक्ति केवल परिवार के बाल काटने, सवारने और नाखून आदि काटने के लिए सपरिवार बसाया गया। घराना दान देने में प्रसिद्ध था। ला० देवी प्रसाद पिताजी की परम्परा को बढ़ाते हुए जब विश्वनाथ के दर्शन करने के बाद घर लौटते तो सेर–दो सेर चाँदी के छोटे बड़े सिक्के रास्तें में बैठे हुए भिखारियों को नित्य बांटते थे। एक बार सिक्के समाप्त होने पर भिखारियों ने कुछ देने का आग्रह किया तो हाथ का चाँदी का कमण्डल उनको दिया और बोले, "इसे बेच देना, तुम्हारे कुछ दिन खाने –पीने का इन्तजाम हो जायेगा।" इस दानशीलता की बात सारे नगर में फैल गई। घर वालों ने इसे सीमा की अति माना और प्रतिबन्ध स्वरूप कलकत्ते से जर्मन सिलवर धातु के कमंडल सस्ते में मंगा कर रखे। वे कहा करते थे, ''तुलसी पंछी के पीये घटे न सरिता नीर। धरम किये धन ना घटे जो सहाय रघुबीर।।" इसी घनाढ्य प्रवृतिके कारण पहलवानी अखाड़ा कई

पीढी तक चला। गोवर्द्धनदास महरोत्रा बताते हैं कि जय शंकर के पिता देवी प्रसाद बलशाली पहलवान थे, उनमें एक भैंसे का जोर पाया जाता था। उन्होने अपने पहलवान पिता बाबू शिवरत्नसाहू से ही खानदानी अखाडे में पहलवानी सीखी थी। देवी प्रसाद जी अपने पुत्र जय शंकर को अपने से भी तगड़ा और बलशाली पहलवान के रूप में देखना चाहते थे। ताकि घर-परिवार की कुश्ती की परम्परा आगे भी चलती रहे। इस विचार के पीछे उनका एक मात्र उद्देश्य यह था कि ''जो व्यक्ति स्वस्थ और बलवान होगा वही परिवार, समाज और आवश्यकता पड़ने पर देश के भी काम आ सकता है।'' जय शंकर प्रसाद जवानी में ''नियमित रूप से रोजाना एक हजार बैठक, पाँच सौ दण्ड के बाद अखाडे में 4-5 पहलवानों से जोर'' करते थे। नित्य गाय का एक सेर दूध पीकर व्यायाम शुरू करते तथा पाव बादाम की ठंडाई ढाई सेर दूध का हरीरा, दो सेर बेदाने का रस और भोजन में एक पाव घी में दाल के तड़के के साथ ही रात्रि में तीन पाव मलाई व सोने के समय ढाई सेर दूध भी लिया करते थे। उनका कद 5 फुट 2 ईंच था। रंग हल्का गेहुँआ शीशे के समान शरीर चमकता था। उनका वजन लगभग तीन मन था। स्वंय शौकिया कुश्ती करते थे और दूर-दूर तक दंगल देखने जाया करते। भारी वजन की मुगदर खूब घुमाते थे। मृत्यु के सात वर्ष पूर्व नई मुगदर की जोड़ी बनावाई जिसका वजन 14 (चौदह) किलो था दोनों जोड़ी मुगदर पुश्तैनी मकान में अभी तक सुरक्षित हैं। प्रसाद को तैरने का बहुत शौक था रोजाना मन मंदिरघाट पर जाकर गंगा में घंटो तैरने का अभ्यास किया करते। प्रसाद को जानने वाले और मित्र छेड़ने के उद्देश्य से उनको "नटवा बैल" या ''नाटी बछिया सदा कलोय'' कहकर चिढाते थे।

जय शंकर प्रसाद की शिक्षा क्वींस कालेज में छटी कक्षा तक हुई। उनके पिता की मृत्यु जब वे मात्र 15 वर्ष के और माता जी की मृत्यु जब उनकी आयु 17 वर्ष थी हो गई। इन कारणों से नियमित शिक्षा आगे नहीं बढ पाई। निजि तौर से वे शिक्षा ग्रहण करते रहे। श्री मोहनी लाल गुप्ता उनको घर पर हिन्दी और संस्कृत पढाने आते थे। यही अध्यापक भारतेन्दू बाबू हरिशचन्द्र के भतीजों, कृष्णचन्द्र और ब्रजचन्द को पढाते थे। इसी से प्रसादजी का उनके परिवार से प्रगाढ सम्बन्ध हो गया जो आजीवन बना रहा। उनकी सस्कृत में पारंगत एक विद्वान् हरिहर महाराज ने किया। प्रसाद जी की स्मरण-शक्ति तेज थी अन्य पुरातन ग्रन्थों के अतिरिक्त 'शीतलाष्टक' मौखिक याद था। गीता का पाठ नित्य प्रतिदिन बिना पुस्तक देखे करते थे। शिशुकाल में मनोवैज्ञानिक अभिरूचि की परीक्षा ली गई थी। तब बालक प्रसाद को विशाल चादर पर अनेक मनोहरी खिलौनों और वस्तुओं के बीच छोड़कर यह देखा गया कि वह क्या चुनता है। सभी को आश्चर्य तब हुआ जब सैकडों खिलौनों को छोड़कर शिशु प्रसाद ने दवात में नरकट की रखी कलम को उठा लिया। विद्यार्थी काल में ही 'कलाधर' उपनाम से लिखना आरम्भ करके। शिशुकाल की भविष्यवाणी को सच करना आरम्भ किया। शुरू में ब्रजभाषा में कविताऐं लिखते थे। लिखने का इतना अधिक शौक था कि पढाई-लिखाई के बाद जब दुकान पर बैठते तो बहीं खाते के रद्दी कागजों पर कविताएँ लिखते थे। एक दिन उनका यह रहस्य खुल गया। उनके बड़े भाई बाबू शम्भू रत्नजी ने रूष्ट होकर उसे व्यवसाय में रूचि लेने का परामर्श दिया। बड़े भाई इतने सख्त प्रकृति के व्यक्ति नहीं थे परन्तु माता जी की मृत्यु के कुछ दिनों के बाद उनकी मृत्यु ने सारी परिस्थिति ही बदल दी। उनका जीवन इससे पूर्व हँसी खुशी और मौजमस्ती में चल रहा था। जय शंकर प्रसाद बहुत विनोद प्रिय थे। एक बार भूगोल के अध्यापक पढा रहे थे। विद्यार्थियों को एक प्रश्न कापी में उतारने को कहा। कक्षा के अन्य विद्यार्थियों ने जहाँ अध्यापक की बोली गद्य भाषा में लिखा, प्रसाद जी और उसके सहपाठी लक्ष्मीनारायण सिंह ने उसे दोहा-चौपाई में पद्य रूप में लिखा। भूगोल के अध्यापक ने कापी देखी। यद्यपि वे उनकी प्रतिभा से प्रसन्न थे किन्तु ऊपरी

दिखावटी क्रोध जताते हुए बोले-'यहाँ तुम दोनों पढ़ने आये हो या शायरी करने'। प्रसाद जी ने मनोविनोद के उद्देश्य से समकालीन पड़ोसियों और परिचितों का नाम करण किया। उनके पड़ोसी महावीर उपाध्याय थे जो पिशाचमोचन में तीर्थ पुरोहित थे उनको 'बचनू महाराज' कहते थे। उनके दाँत के आयुर्वैदिक औषधालय के वैध पण्डित महावीर मित्र थे वे गरीबों को निशुल्क दवाऐं भी बांटते थे उनका नामकरण 'लम्बोदर महाराज' किया। एक पड़ोसी जमीदार और रईस थे, उनकी एक आँख खराब हो चुकी थी उनको शुक्राचार्य कहते थे। डा० भगवानदास से उनकी प्रगाढ मैत्री थी उनको वृद्धबकर की संज्ञा दी। प्रसाद जी के नौकरों में एक नौकर ''मौसा'' सम्बोधन से चिढ़ता था। प्रसाद जी ने मनोविनोद के लिए एक दिन बच्चों में एक-एक पैसा बाँटकर नौकर को मौसा कहलाया तो वह उनको मारने दौड़ा तब बच्चे आगे भागते नजर आये और वह उनके पीछे दौड़ता। इससे देखने वाले हंसी विभोर हो वातावरण को मधुर बनाने लगे। इस वातावरण का ज्ञान एक बार महादेवी वर्मा को हुआ। वे वाराणसी गई तो उनको जयशंकर प्रसाद के नाम से कोई नहीं जानता था। एक युवक ने उनको बताया कि कविता करने वाले ''सुंघनी साहु'' का नाम बताने पर तागें वाला उनके घर ले जायेगा। महादेवी वर्मा से वहाँ पहुँचने पर जो बात हुई वह इस प्रकार है। ''मेरी हँसी देखकर या मुझे भारी-भरकम नाम के विपरीत देखकर प्रसाद जी ने निश्चल हँसी के साथ कहा-" आप तो महादेवी जी नहीं जान पड़ती" मैने भी वैसे ही प्रश्न में उत्तर दिया। "आप ही कहाँ कवि प्रसाद लगते है जो चित्र में बौद्ध-भिक्षु जैसे है।" यह कवियित्री महादेवी वर्मा को छायावाद के कवि जयशंकर प्रसाद का हाजिर जवाबी का उदाहरण है। डा० राजेन्द्र नारायण शर्मा ने अपने एक संस्मरण में इस विषय में बताया कि, "प्रसाद जी ने जीवन में मित्र तो अनेक बनाये पर शिष्य एक भी नहीं बनाया। फलत: एक बार कुछ लोगों ने उनसे जिज्ञासा वश पूछा कि आपने अपना कोई साहित्यिक शिष्य बनाया?प्रसाद जी ने उत्तर दिया कि वाराणासी विलक्षण नगरी है। यहाँ सभी गुरू है शिष्य कोई नहीं। उन्होने उदाहरण देकर समझाते हुए कहा कि गंगातट पर चले जाइए। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को सम्बोधित करता है कि- "काय गुरू। सामने वाला व्यक्ति उत्तर देता है- हाँ गुरू। चेला गायब। उन्होंने आगे कहा कि कुछ विद्वान् अपने नाम के आगे और कुछ नाम के पीछे आचार्य लगाते हैं। जैसे आचार्य केशव प्रसाद मिश्र और पद्म नारायण आचार्य। यहाँ आगे पीछे सभी आचार्य हैं शिष्य कोई नहीं।" डा० एच० सिह कवियत्री सुभद्राकुमारी चौहान की छोटी बहन के पति थे जो बनारस में होमयोपैथी के डाक्टर की प्रैक्टिस करते थे। इस प्रकार की जानकारी के बाद उनसे परिवारिक सम्बन्ध बन गये। डा० एच० सिह जहाँ आरम्भ में प्रसाद जी को छोटी मोटी बीमारी के उपचार के लिए दवा देते थे वहाँ राजवैद्य होने पर उनका इलाज किया और अन्तिम साँस के समय वे उनके ही पास थे। डा० एच० सिह बोलकर हौमियोपैथी की दवा देने को कहते तो विनोदार्थ उनके भी नाम करण किये। एक बार कहा," प्रसाद जी को एक मात्रा एन्टिमकूड दे दें। तत्काल प्रसाद जी बोले-डा० साहब मुझे अभी संसार में कुछ दिन रहना है, अन्तिम कूद मत दें। कुछ दिन बाद स्नायविक दौर्बल्य के लिए कालिफाँस नाम की बायोकैमिक औषधि देने को कहा गया। वे मुस्कराये- बोले, सतयुग, त्रेता और द्वापर से गला छुड़ाकर किसी प्रकार यहाँ तक आ पहुँचा। आपकी बडी मेहरबानी होगी अगर आप कालिफाँस मेरे गले में न डालें। इस पर ठहाके से लोग लोट पोट हो गये।" डा० एच० सिह की पत्नी अर्थात् सुमद्राकुमारी चौहान की बहन का नाम कमला कुमारी चौहान था। वे भी कविता लिखती थी। उनकी एक पुत्री का नाम मैत्रेयी सिंह था। उन्होने प्रसाद जी के विनोद प्रिय होने के बारे में वर्णन करते हुए बताया कि वह और उसकी बहन जब छोटी आयु की थी तो प्रसाद जी उनको मुँह बना कर चिढाया करते थे। "और तंग भी कर देते थे। उन्होने मेरी पीठ कर चिकोटी काट दी थी और मैं उनसे रूठ गई

थी। नीचे बाबू जी ने मुझे आवाज दी। जब में उनके पास गई तब प्रसाद जी वहाँ बैठे मिले। उन्होने मेरा हाथ पकड़कर अपने पास खींच लिया और मेरी दोनों चोटियों को पकड़कर ढुड्डी से मिलाकर बोले-"अरे खूखी (उनका बचपन का नाम) तुम्हें तो दाढी निकल आई है" सब लोग हँस पड़े। मैं भी हँस पड़ी तथा रूठना खत्म हो गया।" मैत्रेयी सिंह का पहला नाम 'दुर्गा' था प्रसाद जी के सुझाव पर ही बदलकर 'मैत्रेयी' नाम रखा गया था।

ऐसे विनोदप्रिय जयशंकर प्रसाद को प्रारब्ध ने कम दुख नहीं दिये। माता जी, पिता जी और बड़े भाई की मृत्यु के बाद उनकी दो पत्नियों की मृत्यु हुई। तीसरी शादी 1918 में हुई और उनसे रत्नशंकर पुत्र का जन्म हुआ। प्रसाद जी का दुख और विपत्तियाँ यही तक सीमित नहीं रही। परिवार के आपसी कलह के कारण सम्पत्ति 'कोर्ट आफ वार्डस' में चली गई। चांदी से बने बर्तनों में भोजन करने वाले के जीवन में तब एक दिन ऐसा भी आया कि उनको मिट्टी की हाँड़ी में अपना भोजन पकवाना पड़ा। कोर्ट आफ वार्ड में सम्पति जाने के बाद प्रसाद वहाँ से कुछ नहीं ले सकते थे। व्यापार में लेने वालों का कर्ज उनके कंधो पर आ पड़ा। इस घटना का प्रसाद की मन:स्थिति पर प्रभाव अवश्य पड़ा, परन्तु वे विचलित नहीं हुए। उनको व्यवसाय की तरफ ध्यान देना पड़ा। कस्तुरी का या अन्य वस्तुओं का व्यापारी आता तो परख कर खरीदते। वे अपने व्यवसाय के पूर्ण ज्ञाता थे। वे सुर्ती इत्र और हर प्रकार के टायलेट का सामान बहुत सुन्दर बना लेते थे। प्रसाद जी जीवीकार्जन के लिए मजबूरी में यह सब करते थे उनकी रूचि तो साहित्य सर्जन में थी जिसे उन्होनें 9(नौ) वर्ष की अल्पायु में आरम्भ किया। प्रसाद जी की इस परिस्थिति का डा॰ ब्रजलाल वर्मा ने श्याम लाल गुप्त 'पार्षद' के बारे में संस्मरण लिखते हुए बड़े सुन्दर ढंग से वर्णन किया, ''महाकवि जयशंकर प्रसाद के ज्येष्ठ भ्राता उनकी कविता रचना पर इसलिए प्रतिबन्ध लगाते थे कि पैतृक ऋण किसी प्रकार भी अदा करना है। अत: प्रसाद जी को व्यापार में तन्मय होकर लगना चाहिए। इधर पार्षद जी के पिता को किसी ने समझा दिया कि श्यामलाल के नेत्र या कान आदि नष्ट हो जायेंगें यदि उनको कविता लिखने से न रोका गया। परिणामत: पिता जी ने वह पूरा 'पार्षद' रचित बालकाण्ड कुएँ में फेंक दिया। प्रसाद और पार्षद दोनों ही वैश्य कुलोद्भाव हैं दोनों को कुछ दिन छिपे-छिपे काव्य-रचना करनी पड़ी। प्रसाद पार्षद से सात वर्ष बड़े थे। प्रसाद अकाल काल-कलवित हुए, पार्षदजी स्वस्थ हैं। इन दोनों समयुगीन राष्ट्रीय कवियों के जीवन का यह विलक्षण समानान्तर वृत्त है।"

"लीक लीक गाड़ी चले, लीकहिं चले कपूत।
लीक छाड़ि तीनों चले, सायर, सिंह, सपूत।"

प्रसाद जी ने अपना मार्ग चुन लिया था परन्तु वह उनके बड़े भाई शम्भुरत्न जो अपने अनुज को बहुत मानते थे, को प्रसाद जी के बढते वैराग्य और साहित्य के अनुराग से दुख होता। उनको आशंका रहती कि 'सुँधनी साहु' की अन्तरप्रान्तीय प्रतिष्ठा को साहित्य-शक्ति के हाथों बेच देगें। एक बार झल्ला कर बोले, "तुम कुलबोरन हो, तुमने कुल की मर्यादा डुबो दी। सब व्यापार चौपट हो रहा है तुम्हारे रवैये से।" ज्येष्ठ भ्राता शम्भुरत्न की मृत्यु के बाद परिवार में केवल उनकी भावज, पत्नी और पुत्र रत्नसेन थे। व्यवसाय की पूरी जुम्मेदारी उनके कन्धों पर आ पड़ी और निबाहते रहे। परन्तु प्रसाद जी की दिनचर्या साहित्यिक रही। बचे हुए समय को प्रात: काल से रात्रि तक वे या तो पढ़ने -लिखने अथवा लेखक और कवियों से चर्चा में बिताते। सांय स्नानादि से निवृत होकर नारियल बाजार वाली दुकान की गद्दी पर नहीं बैठते, दुकान के सामने चौक थाने के ठीक पीछे एक कमरा ले रखा था उसमें दरी, चाँदनी बिछ जाती, उसके आगे तकिया लगा होता,फिर वहीं साहित्यिक दरबार लगता था। उस दरबार में हिन्दी के बड़े-बड़े साहित्कार, कवि और लेखक मिलते जैसे मैथिली शरण गुप्त, राय कृष्ण

दास, निराला, उग्र, रामचन्द्र वर्मा, विनोद शंकर व्यास, शन्नि प्रिय द्विवेदी, नन्द दुलारे वाजपेयी, पद्म नारायण आचार्य और लाला भगवानदीन प्रमुख थे। यह बैठक लगभग दो घंटे चलती। पूरी गली उन लोगों के आपसी विनोद से उत्पन्न ठहाके से गुँजती। प्राय: रात दस बजे वह महिमामय साहित्यिक सत्संग समाप्त होता था। प्रसाद जी ज्यादातर रात्रि में ही पान जमाकर अपनी लेखनी चलाते जिससे शरीर को आराम और निद्रा की पूर्ति नहीं हो पाती थी। पाचन शक्ति क्षीण हो जाने के कारण डायरिया की शिकायत रहने लगी। इन सभी शारिरिक कष्टों के बावजूद प्रसाद जी निरन्तर साहित्य रचना करते रहे। 1910 ई॰ में प्रसाद जी ने साहित्य लेखन आरम्भ किया। उनका विकास और प्रकाश धीरे-धीरे बढ़ने लगा। पत्र-पत्रिकाओं की उनके बारे में उत्सुकता बढ़ी और सम्पादकों के अनुरोध उनको प्राप्त होने लगे। 'सरस्वती' पत्रिका एक प्रमुख साहित्यिक पत्रिका थी। प्रसाद जी का आचार्य द्विवेदी जी से कुछ मतभेद था। जिसके कारण उस पत्रिका से उनको प्रोत्साहन नहीं मिला। इसलिए अपने भानजे श्री अम्बिका प्रसाद गुप्त से 'इन्दु' मासिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ करवाया। इस पत्र के लिए प्रसाद बराबर लिखते रहे और छपता रहा। पत्र में आर्थिक नुकसान होता था जिसकी पूर्ति प्रसाद पूरा करते। पं. रूप नारायण पाण्डेय उस समय उस पत्र के सम्पादकीय विभाग में थे। प्रसाद जी ने 'चन्द्र गुप्त' 'स्कन्द गुप्त' 'अम्रपाली' और ध्रुव स्वामिनी' ऐतिहासिक नाटक लिखे। पं. लक्ष्मीनारायण मिश्र प्रसाद के घर पधारे उन्होने पहले दो नाटकों की उनके सामने ही तीखी भर्त्सना आरम्भ कर दी, बोले, "प्रसाद जी! आप अपने नाटकों में गडे मुर्दे उखाड़ रहे हैं। चन्द्र गुप्त, स्कन्द गुप्त अपने समय के सामन्तशाही युग के राजा हुए। हुए न, इससे क्या हुआ?उन्हें युग पुरूष नहीं कहा जा सकता। आप जैसे साहित्यकार ने उन पर लेखनी कैसे उठायी?एक दिन आपको इसका उत्तर देना ही होगा, आप बच नहीं सकते।" मुन्शी प्रेमचन्द्र उच्च कोटि के साहित्य के रचनाकार थे। वे बनारस में ही रहते थे वे। प्रसाद के विराधियों में थे उन्होनें भी प्रसाद के नाटकों के बारे में लिखा," नाटको में ऐसे प्लाट का उपयोग करना गडे मुर्दे उखाड़ना है।" यह आलोचना 'माधुरी पत्रिका में निकली थी प्रसाद जी पर इस प्रकार की आलोचनाओ का कोई प्रभाव नही पड़ा और वे साहित्य साधना में सतत तल्लीन रहे। कई महिनों के बाद प्रेमचन्द प्रसाद के यहाँ आये और अपने लिखने पर खेद प्रकट किया। इसके बाद तो प्रसाद जी की घनिष्टता बढ़ गई। प्रात: काल टहलने के लिए विकटोरिया पार्क में जाते तो वहाँ प्रेमचन्द्र से मुलाकात बराबर होती। उसी अवधि में कानपुर नगर से प्रकाशित 'प्रताप' पत्र में कृष्णानन्द गुप्त का एक लेख छपा जिसमें कहा गया था कि ये नाटक "ऐसी बज्र भाषा में लिखे गये है कि उसे समझना भी टेढी खीर है और खेले तो जा ही नहीं सकते।" वाराणासी के कुछ युवक साहित्यकारों ने उस चुनौती को स्वीकार कर उसे प्रसाद जी के निर्देशन में अभिनीत किया। उसमें लक्ष्मी कान्त झा जो बाद में जम्मू काश्मीर और रिजर्व बैंक के गवर्नर रहे, गणेश दत्त झा, जो बाद में राजस्थान के जज रहे, आदि व्यक्तियों ने भाग लिया। बाद में आलोचक को उसका व्यौरा भेजा और 'प्रताप' पत्र में प्रकाशन करवाया। 'नारी और लज्जा' और "आँसू" छायावाद की हृदय स्पर्शी कविताऐं हैं 'गुंडा' कहानी को मुंशी प्रेमचन्द ने देखकर कहा था क्या कटा था लिखें उसके उत्तर में यह कहानी लिखि। सम्वत् 1963 तदानुसार 1906 में प्रसाद की भारतेन्दु में पहली बार एक रचना छपी थी। तीन वर्ष बाद 1909 में 'उर्वशी चंपू' एवं 'प्रेम राज्य' का प्रकाशन हुआ। 'इन्दु' की स्थापना के बाद कविताएँ, कहानियाँ, नाटक और लेख निरन्तर पाठकों को पढ़ने के लिए मिलने लगे। अगस्त 1910 में ग्राम शीर्षक से पहली कहानी प्रकाशित हुई। इस अवधि में हिन्दी भाषा अपने प्रारम्भिक स्तर पर थी। कोई भी लेखक और सहित्यकार किसी प्रकार के नये प्रयोग को करने के लिए तैयार नही था। प्रसाद ने तब एक नये युग का सूत्रपात किया। ''आकाशदीप'',

''गुण्डा'' कथा की तरह, प्रसाद की मौलिक कृति पाठकों को पंसद आई। विद्वान् आलोचक जब नई कृति को पढ़ते तो उसकी विभिन्न कोणों से जाँच करते थे। माखन लाल चतुर्वेदी ने इस विषय में एक सस्मरण में लिखा कि "सन् 1913 में खण्डवा से 'प्रभा' नाम की मासिक पत्रिका प्रकाशित होती थी । उसमें आलोचना के लिए प्रसाद का छोटा-सा कहानी -सग्रंह आया। उस पुस्तिका की एक कहानी का नाम 'मदन मृणलिणी' और एक कहानी का नाम "छाया" भी था। उन दिनों मौलिक कहानियाँ लिखने का युग हिन्दी में जड़ नहीं पकड़ पाया था। हमारे अन्य पड़ोसी प्रदेशों की भाषाओं में भी अग्रेंजी-बँगला कहानियों से अनुवाद हुआ करते थे। 'प्रभा' के सम्पादकीय कार्यालय से मैंने प्रसाद जी को पत्र लिखा था कि कहानियाँ बहुत अच्छी है, मैं पुस्तक को दो बार पढ़ गया, कृपया लिखिए कि ये कहानियाँ कहीं से अनुवाद तो नही की गई? 'इन्दू' के सम्पादक गुप्त जी का पत्र आया कि वे कहानियाँ मौलिक ही है। किन्तु प्रसाद की यादाश्त देखिए कि जब इस घटना के 19 वर्ष बाद सन् 1932 में शान्ति निकेतन से लौटते हुए मैं उनसे पहले पहल मिला, तब उन्होने हँसकर कहा, अब तो आपको विश्वास है कि मेरी कहानियाँ अनुवाद नहीं होती।"

28 जनवरी 1937 ई. से जयशंकर प्रसाद को ज्वर आने लगा था। परिवार वालों और साहित्यिक विद्वानों ने समझा कि यह साधारण ज्वर है। ठीक हो जायेगा। 22 फरवरी 1937 को उनके बलगम की जाँच कराई गई जिससे मालूम हुआ कि उन्हें राजयक्ष्मा हो गया है। प्रसाद इस रोग के बारे में भली प्रकार से जानते थे क्योंकि उनकी पूर्व पत्नियों का देहान्त भी इसी व्याधि से हुआ था। लोगों ने बहुत आग्रह किया कि वे भुआली अथवा यादवपुर के सैनिटोरियम में भर्ती हो जायें। पूछते कि वहाँ कितने लोग बच पाये। प्रसाद को जानकारी थी कि इस बीमारी का कोई उपचार नहीं है इसलिए वे किसी पहाड़ी या मनोहारी स्थान पर भी जाने को तैयार नहीं हुए। प्रसाद जी में अन्य लोगों की तरह वाराणसी की पवित्रता में अटूट विश्वास था इसलिए उसे छोडकर किसी भी स्थिति में वहाँ से जाने को माने नहीं। फिर वे कामायनी के लेखन को पुरा करने को आतुर रहते थे। जब कभी डा० एच० सिंह को बीमारी से राहत के लिए बुलाते तो यही कहते कि उन्हें कामायनी महाकाव्यग्रन्थ को पूरा करने तक जीवित रखें। जयशंकर प्रसाद के काव्य गुरू देवी प्रसाद शुक्ल थे उन्होंने प्रसाद की इस महाकाव्य को पूरा करने में सहायता की । वे प्रसाद द्वारा तैयार लेखन को पढ़ते और छोटी-मोटी कमियों का सुधार कर देते। कामायनी के पूरा हो जाने के बाद प्रसाद ने 'इरावती' उपन्यास के लेखन का कार्य प्रारम्भ किया जो पूरा नहीं हो सका। महाकवि जयशंकर प्रसाद का देहावसन 15 नवम्बर 1937 को हुआ। वह जयशंकर प्रसाद जो बनारस में आदरणीय था बनारस के लोग आपस में नमस्तें, प्रणाम राम-राम आदि मिलने पर करते थे। वे ही बनारस के लोग काशी-नरेश के दर्शन होने पर 'महादेव-महादेव' कहकर अभिवादन करते थे क्योंकि वे उनके शासक थे। बनारस नगर में दुसरा परिवार सुघंनी साहु का परिवार था। जिसके प्रसाद सदस्य थे। जिनको देखकर ''महादेव-महादेव'' कहकर अभिवादन करते थे। इस परिवार के ऊपर कोई शासन का बोझ नहीं था जिसको निभाने को वे मजबूर थे किन्तु उस परिवार से प्रेम और स्नेह था। उस परिवार का गरीबों पर दया का अनुग्रह था जिसके कारण वे ऐसा करते थे। उन लोगों ने जब जय शंकर प्रसाद की अकस्मात् 46 वर्ष की अल्पायु में मृत्यु का समाचार सुना होगा तो क्या प्रतिक्रिया हुई होगी उसका अनुमान ही लगाया जा सकता है। जयशंकर प्रसाद को ज्ञान चन्द्र जैन जैसे साथी ने अजात् शत्रु माना। प्रसाद का किसी से वैर भाव नहीं था वे तीन कामों से परहेज करते थे और अन्यों को भी वैसा ही करने की सलाह देते थे" द्रव्यादानं, विवादं व परोक्ष दारदर्शन् (रूपया उधार देना, विवाद और गृहस्वामी की अनुपस्थिति में उसकी स्त्री से मिलना) उनका कहना था कि जो ये तीन नहीं करता, उसकी मित्रता खंडित नहीं होती।

जय शंकर प्रसाद घर के दरवाजे के सामने शिव मंदिर था। उसमें फाल्गुणी महाशिवरात्रि को महोत्सव होता। उसमें अधिकतर साहित्य सेवियों का समागम होता। श्रावणी पूर्णिमा (रक्षा बन्धन) के दिन चाँदी और ताम्बे के सब तरह के बड़े-छोटे सिक्कों की राशि लेकर बैठते। अधिकांश ब्राह्मणों की दक्षिणा बँधी-बधाई थी उसी के अनुसार उनको मिल जाता था। उनको समुचित आदर सम्मान भी देते। लेकिन प्रसाद अपने सम्मान के लिए बचते थे। वे कभी किसी कवि सम्मेलन में नहीं जाते थे। मित्र गोष्ठी में सस्वर कविता पाठ करते थे। गंगा के बजडें में मित्र -मण्डली को बड़ी उमंग से गाकर अनेक कविताएँ सुनाते थे। शिवपूजन सहाय ने अपने संस्मरण में बताया कि गोरखपुर में अ० भा० हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन की अध्यक्षता के लिए उसके सामने तार प्राप्त हुआ था। उसके आग्रह के बावजूद प्रसादजी ने उसका उत्तर तक नहीं दिया। वाराणसी में एक बार काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के तत्वाधीन में हिन्दी शब्द सागर के सम्पादकों के सम्मान और कवि सम्मेलन का आयोजन हुआ। उसके अध्यक्ष थे प्रसाद जी के साहित्य-गुरू महा महोपाध्याय देवी प्रसाद शुक्ल कवि चक्रवर्ती। प्रसाद जी यहाँ पर भी कविता पाठ नही करना चाहते थे। आचार्य श्यामसुन्दर दास के आग्रह को भी उन्होने अस्वीकार कर दिया। तब गुरू के अध्यक्ष पद से आदेश को स्वीकार करते हुए ललित मधुर कंठ से कविता गान करके सारी सभा को मन्त्रमुग्ध कर दिया। सम्मान की चाहत और पदलोलुपता अहंकार और दम्भ प्रवृति को दर्शाती है। जय शंकर प्रसाद इन अवगुणों से अछूते रहे। डा० राजेन्द्र नारायण शर्मा ने अपने सस्मरण में बताया कि काशी नरेश उस घराने की दान शीलता, धर्म और कर्तव्य परायणता को भलि भाँति जानते थे। उनको जन सेवा का अवसर देने के लिए न्यायालय में जूरी का सदस्य नियुक्त किया। उसे उच्च प्रतिष्ठा वाले सहर्ष स्वीकार कर लेते थे। प्रसाद जी को जब सम्मान मिला तब कचहरी में उपस्थित होना पड़ा। वहाँ उपलब्ध कराये गये आसन में बड़ी हीनता का अनुभव हुआ। जहाँ उनके सुझावों की कद्र नहीं वहाँ वह कैसे बैठते। कान से कम सुनाई-पड़ने का प्रमाण पत्र भेजें और किसी प्रकार उससे मुक्ति पाई।" कई व्यक्ति इस कार्य को जनविरोधी भी कह सकते हैं क्योंकि जूरी का सदस्य बनकर न्याय के शासन में निष्पक्षता लाना भी जन-सेवा होती। यह प्रसाद जी पर सही आरोप नहीं है प्रसाद जी सच्चे देश भक्त और जन सेवक भी थे। उनके समय में स्वाधीनता आन्दोलन चर्म सीमा पर था। क्रान्तिकारी अग्रेजों के विरूद्ध सीधी कार्यवाही कर रहे थे। इस वातावरण में कोई भी व्यवसायी अपने व्यवसाय को हानि देने के लिए सरकार के विरूद्ध जाने की हिम्मत नहीं करता था। ''प्रसिद्ध क्रान्तिकारी अमर शहीद चन्द्रशेखर आजाद को काली महल के नीममाई वाले मकान में भूगर्भ में निवास संज्ञक अपरोक्ष, अगोचर ढंग से रहने की व्यवस्था प्रसाद ने स्वयं की। सन्तू नाम के भृत्य को प्रसाद जी ने उनकी देखरेख के लिए तैनात किया था। उस मकान में सुँघनी साहू का सुर्ती पत्ते का गोदाम था।'' जयशंकर प्रसाद के प्रायाण को छः दशक से ऊपर हो चुके है। उनकी कृतियों विशेषकर ''कामायानी'' ग्रन्थ का विशेष महत्व है परन्तु प्रसाद ने जिस गोवर्द्धन सराय के जिस घर में जन्म लिया था जीर्ण-शीर्ण दशा मे पड़ा है। राजनीतिज्ञ कभी वहाँ जाते है तो स्मारक बनाने का आश्वासन देते है। प्रसाद जी के सुपुत्र रत्न सेन ने उसके लिए लगभग पौन एकड़ भूमि उपलब्ध कराई है। सरकार विद्वानों को कितना महत्व देती है यह एक ज्वलन्त उदाहरण है। वैश्य समाज को अपनी इस विभूति को उचित सम्मान दिलाने के लिए प्रयत्न करने चाहिए।

भारत सरकार के डाक विभाग ने उनके सम्मान में 16-09-1991 को 2 रू. मूल्य की 6 लाख डाक टिकट जारी की

▲▲▲

पताका रक्षा प्रेरक–श्यामलाल गुप्त

पताका रक्षा प्रेरक - श्याम लाल गुप्त ''पार्षद''

'झण्डा ऊँचा रहे हमारा' गीत जब गाया जाता है देश का हर नर-नारी सैनिक-असैनिक रोमांचित हो जाता है। राष्ट्र गान 'जन मन गन' के रचनाकार ठा० रविन्द्रनाथ टैगोर हैं यह सभी जानते है। परन्तु 'झण्डा ऊँचा रहे हमारा' के लेखक का क्या नाम है कोई विरला ही जानता होगा। यह गीत अपना इतिहास रखता है। उसकी जानकारी से पूर्व गीत क्या है?यह जानना आवश्यक है।

विजयी विश्व तिरंगा प्यारा, झण्डा ऊँचा रहे हमारा
सदा शक्ति बरसाने वाला
प्रेम सुधा-सरसाने वाला
वीरो को हरषाने वाला
मातृभूमि का तनमन प्यारा। झन्डा ऊँचा.....

स्वतन्त्रता के भीषण रण में
लखकर बढ़े जोश क्षण-क्षण में
कापें शत्रु देखकर मन में
मिट जावे भय संकट सारा। झन्डा ऊँचा.....

इस झण्डे के नीचे निर्भय
लें स्वराज्य हो अविचल निश्चय
बोलो भारत माता की जय
स्वतन्त्रता हैं ध्येय हमारा। झन्डा ऊँचा.....

आओ प्यारे वीरों आओ
देश धर्म पर बलि-बलि जाओ
एक साथ सब मिलकर गाओ
प्यारा भारत देश हमारा। झन्डा ऊँचा.....

इसकी शान न जाने पावे
चाहे जान भले ही जावे
विश्व विजय करके दिखलावें
तब होवे प्रण पूर्ण हमारा। झन्डा ऊँचा.....

यह गीत पताका रक्षा प्रेरक श्री श्याम लाल गुप्त "पार्षद" ने लिखा था। उनका जन्म सम्वत् 1953 भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी को (सन् 1896) कानपुर जिले के नर्वल ग्राम में हुआ था। उनके पिता जी का नाम विश्वेश्वर प्रसाद और माता जी का नाम कौशल्या देवी था। श्री सोहन लाल द्विवेदी जी ने "झंडा ऊँचा रहे हमारा" शीर्षक से श्यामलाल गुप्ता जी की कविताओं का एक संग्रह प्रकाशित करवाया। यह संस्करण 1972 वर्ष का है। उसके बारे में लिखा है कि "पार्षद जी की कविताओं का प्रस्तुत संग्रह बड़ी कठिनाई से बन पाया है उन्होने कभी अपनी रचनाओं का सग्रंह अपने पास नहीं रखा। मेरे निरन्तर आग्रह करने पर बहुत खोज-बीनकर जो कुछ भी रचनाएँ मिल सकी उन्होंने मेरे पास भेजने की कृपा की है।" श्याम लाल गुप्त की शिक्षा के बारे में बताया कि उन्होने नर्वल ग्राम से मिडिल कक्षा पास करके हिन्दी साहित्य सम्मेलन की "विशारद" की परीक्षा उतीर्ण की। द्विवेदी जी ने श्याम लाल गुप्त 'पार्षद' के साहित्य रचना के जीवन को जयशंकर प्रसाद के जीवन से तुलना की है। उन दोनो ही रचनाकारों को परिवार वालों के विरोध का सामना करना पड़ा था। जय शंकर प्रसाद तो दृष्टत्व धनाभाव में थे परिवार पर भारी ऋण था उनसे धन कमाकर परिवार को खुशहाल करने का आग्रह था। परन्तु पार्षद जी को तो अनहोनी, अनदेखी, अप्रत्याशित होनी का शिकार होना पड़ा था। उनके पिता जी को किसी ने समझा दिया था कि आपके पुत्र के नेत्र या कान आदि नष्ट हो जायेंगे यदि उनको कविता लिखने से न रोका गया। उन्होने हर-गीतिका, सवैया, घनाक्षरी आदि छन्दों में रामकथा के बाल काण्ड की रचना की। उस रचना को श्याम लाल जी के पिता ने मोह वश कुऐं में फेंक दिया । जय शंकर प्रसाद और पार्षद जी दोनों वैश्य समाज से थे। उन्होने स्थिति जानकर छुप-छुपकर रचना की। पार्षद जी के बारे में जैसा बताया है कि उन्होने अपनी रचनाओं का संग्रह नहीं किया। दुसरे शब्दों में लापरवाह रहे। इस कारण से साहित्य जगत को उनकी रचनाओं से वंचित रहना पड़ा। जय शंकर प्रसाद अकाल काल कवलित हुए और सीमित रचना कर पाये। उन दोनो समयुगीन राष्ट्रीय कवियों के जीवन का यह विलक्षण समानान्तर वृत्त है।

"झँडा ऊँचा रहे हमारा" की रचना भारत देश में व्याप्त राजनैतिक, अर्थिक और सामाजिक परिस्थिति के कारण हुई। पार्षद जी 'प्रताप' समाचार पत्र के नियमित पाठक थे। यह समाचार पत्र गणेश शंकर विद्यार्थी द्वारा सम्पादित होता था। उस सम्पादक का क्रान्तिकारियों से सम्पर्क था। उनके विचार, विश्वास, निष्ठा भी उसी प्रकार की थी। वे क्रान्तिकारियों के बलिदानों , उन पर हो रहे अत्याचारों,

यातनाओं पर उसमें विस्तृत रूप से लिखते थे। इसी कारण उनके उस पत्र को कई बार ब्रिटिश सरकार ने जब्त किया और वे कई बार कारावास की सजा भी प्राप्त कर चुके थे। यह समाचार पत्र पार्षद जी के लिए प्रेरणा का स्त्रोत हो गया। बहुत सी रचनाऐ "प्रताप" में प्रकाशित होने लगी। पार्षद की नैसर्ग प्रतिभा को विद्यार्थी जी ने प्रथम दृष्टि में हो परख लिया था। वे जनपदीय या प्रदेशीय, राजनैतिक अथवा सांस्कृतिक कार्यक्रमों में जाते तो वहाँ पर पार्षद जी से अपनी रचना पाठ की सिफारिश करते थे।

'पार्षद' जी 1914 में कानपुर शहर में म्युनिसिपल बोर्ड के प्राइमरी स्कुल के अध्यापक नियुक्त हुए। प्रशिक्षण पर भेजने के लिए आपसे नौकरी का बोन्ड भरने के लिए कहा गया तो इंकार कर दिया और त्याग पत्र देना पड़ा। आप शिक्षा में योगदान देते रहे। 'दोसर वैश्य इन्टर कालेज' की स्थापना की और संचालन किया। 1919 में गांधी जी के आव्हान पर पार्षद जी ने सक्रिय राजनीति में प्रवेश किया और आपना कार्यक्षेत्र फतेहपुर जिले को चुना। यह जिला शिक्षा और आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा था। सात वर्ष तक वे फतेहपुर जिला काँग्रेस के अध्यक्ष रहे। स्व॰ वैज गोपाल जी महामन्त्री थे। जो पेशे से वकील थे। 1921 में महात्मा गांधी के आव्हान पर असहयोग आन्दोन्लन पार्षद जी के नेतृत्व में चला तो वे पहली बार जेल गये। 1930 तथा 1944 में फिर जेल यात्रा की। 1932 तथा 1942 में फरार होकर अज्ञात जीवन जिया। पार्षद जी समाज में अत्याचार और शोषण को सहन नहीं करते थे। किसी असमाजिक व्यक्ति के विरूद्ध रचना लिखी तो 400/- रू॰ जुर्माना और जेल जाना पड़ा। उस राजनैतिक जीवन में ही पार्षद जी ने '1924' ई॰ में ही पावन झंडा गीत की रचना की। इस गीत की रचना कैसे हुई इसके बारे में सोहन लाल द्विवेदी जी ने श्री रामसेवक श्रीवास्तव से एक मुलाकात में पार्षद जी ने जो बताया वह उद्धृत किया। "1921 में गणेश शंकर विद्यार्थी से "सनेही" जी के साथ (पार्षद जी की) मुलाकात हुई वह 'प्रताप' निकाल रहे थे। पहली कविता तभी छपी, फिर छपती ही रही। 1923 में मैं फतेहपुर जिला क्रांग्रेस का अध्यक्ष था वार्षिक अधिवेशन किया। पं॰ मोती लाल नेहरू को अध्यक्षता के लिए बुलाया गया था। पहले दिन वह सभापति रहे। दूसरे दिन बम्बई से उन्हें क्रांग्रेस के ही अधिवेशन में भाग लेने के लिए तार द्वारा बुला लिया गया। मैंने विद्यार्थी जी से सभापतित्व करने की प्रार्थना की। न चाहते हुए भी वह आये, और सभापति पद से ऐसा विद्रोही भाषण दिया कि गिरफ्तार कर लिए गये। मुकदमा चलाकर उन्हें एक साल की सजा दे दी गयी। मुझे निरन्तर लगता रहा कि उनकी सजा का जिम्मेदार मैं हुँ।

जेल से छूटकर आने के बाद उन्होने कहा कि हमारे पास झंडा गीत नहीं है, तुम क्यों नही लिख देते। यह बात 1924 की है। मैं आलस्य में टालता रहा। एक दिन उन्होने व्यंग्य कर दिया, ''बहुत घमण्ड हो गया है, वायदा करो कि कल सुबह तक दे दोगे।'' मैनें वायदा किया, लेकिन रात भर नींद नहीं आयी। बार-बार सोचता रहा कि जिस व्यक्ति को तेरे कारण एक साल जेल मे रहना पड़ा उसका आग्रह पूरा नहीं कर पा रहा हूँ। रात के आखिरी पहर में कागज कलम लेकर बैठा और एक ही जगह दो गीत लिख डाले। पहला गीत 'झण्डा ऊँचा रहे हमारा।' और दूसरा "राष्ट्र गगन की दिव्य ज्योति, राष्ट्रीय पताका नमो नमो"। सुबह आँख खुली तो दरवाजे पर डा॰ जी॰ जी॰ जोग, गंगा सहाय चौबे और हमीद अली खड़े हैं। उन्हें विद्यार्थी जी ने भेजा था। (अब सिर्फ श्री खाँ जीवित है।) दोनों कविताऐं दे दी। बाद में 'झंडा ऊँचा रहे" वाला गीत राजर्षि पुरूषोत्तम दास टण्डन को दिखाया गया । उन्होनें कहा कि क्योंकि गीत बड़ा हो गया है, अत: ''लाल रंग बंजरबली का" और "इस चरखे का चित्र संवारा" वाले दो पद निकाल दो, शेष ठीक है। मैंने उनकी बाल मान ली। गीत स्वीकृत हो गया और उसके बाद जगह जगह गाया जाने लगा।" "झंडा ऊँचा रहे" गीत की पूरी जानकारी प्राप्त होने के बाद यह उत्सुकता रह जाती है कि वह दूसरा गीत क्या था जो इस गीत के सामने पिछड गया था और जन प्रिय नहीं हुआ :

दूसरा गीत :

"राष्ट्र-गगन की दिव्य ज्योति, राष्ट्रीय पताका नमो-नमो
भारत जननी के गौरव की अविचल शाखा नमो नमो
कर में लेकर इसे सूरमा कोटि-कोटि, भारत सन्तान
हँसते हँसते मातृभूमि के चरणों पर होंगे बलिदान
हो घोषित निर्भीक विश्व में तरल तिरंगा नवल निशान
वीर हृदय हिल उठे मार ले भारतीय क्षण में मैदान
हो नस नस में व्याप्त चरित सुरमा शिवाका नमो नमो
राष्ट्र गगन की दिव्य ज्योति, राष्ट्रीय पताका नमो नमो
उच्च हिमालय की चोटी पर जाकर इसे उडायेंगें
विश्व विजयिनी राष्ट्र-पताका का गौरव फहरायेंगे
समरांगन में लाल लाडले लाखों बलि बलि जायेंगें
सबसे ऊँची रहे, न इसको नीचे कभी झुकायेंगें
गुंजे स्वर संसार सिन्धु में स्वतन्त्रता का नमो नमो
भारत जननी के गौरव की अविचल शाखा नमो नमो।।
राष्ट्र-गगन की दिव्य ज्योति, राष्ट्रीय पाताक नमो नमो''

दोनो गीतों की तुलना स्वत: स्पष्ट है यह गीत अधिक साहित्यिक और कवित्वपूर्ण है। धुन अवश्य बन जाने पर कर्णप्रिय और मीठी हो जाये परन्तु "झंडा ऊँचा रहे" अधिक सुगम और लोक ग्राह्य है। यह गीत हजारो लाखों क्रांतिकारीयों और स्वतन्त्रता सेनानियों को झूमने और आतातायीओं के अत्याचारों का सामना करने के लिए प्रेरणा देता रहा।1925 के काग्रेंस सम्मेलन में यह गीत प्रथम बार गाया गया। श्री गणेश शंकर विद्यार्थी जी ने इसे दैनिक प्रताप के प्रथम पृष्ट पर छापा था। पाण्डेय बेचेन शर्मा 'उग्र' ने अपने लेख जो "आज" समाचार पत्र में प्रकाशित हुआ था लिखा, ''अगर पार्षद जी दूसरे देश में पैदा हुए होते तो चान्दी उनके आंगन में बरसती, सम्मान उनके चरणों में लौटता होता, लेकिन यह कृतघ्न सरकार पार्षद जी की याद तक नहीं करती।" उग्र जी ने पार्षद जी के साथ क्या हुआ उसका विवरण केवल एक, हाँ केवल एक ही वाक्य में कर दिया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जोड़-तोड़ की राजनीति प्रारम्भ हो गई थी। लोग पद् लोलूप हो गये थे जिसके लिए वे एक दूसरे से झगड़ते और विरोधी को नीचा दिखाने की होड़ में लगे रहते थे। पार्षद जी ने स्वयं इस विषय में बताया, ''आजादी मिलने के बाद एक बार टिकट के लिए लखनऊ गया था। टण्डन जी ने कहा, तुम इन झंझटो में मत पड़ो, राजनीति धोखाधड़ी का काम है पछताआगे और मैने उनकी बात मान ली"

सुप्रसिद्ध कवि बालकवि बैरागी ने एक संस्मरण में मर्माहत होकर लिखा था **''शायद यही एक बनिया है जो लगातार घाटे में ही जीता रहा है"** यह संवेदनशील वक्तव्य 26 जनवरी 1972 के पार्षद जी से सम्बन्धित संस्मरण में दिया है। यह कितना दुर्भाग्यपूर्ण सत्य रहा कि उस वर्ष तक हजारों लोगों ने जोड़-तोड़ और संबन्धित पहुँच के आधार पर कितनी ही सामान्य उपलब्धियों पर परितोष, प्रमाण पत्र और वित्तिय लाभ प्राप्त किया परन्तु श्याम लाल गुप्ता 'पार्षद' सारे जीवन उनसे वचिंत रहे। बाल कवि बैरागी ने संस्मरण में जानकारी दी कि, ''27 जनवरी, 1972 को प्रात: मैंने केन्द्रिय रक्षा-उत्पादन राज्य मन्त्री, श्री विद्याचरण शुक्ल के साथ केन्द्रीय मन्त्री उमाशंकर दीक्षित से भेंट की । सवेरे की चाय भी उनके साथ ही पी। सन् 1924 में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की ओर से उस झंडा गीत को मान्य किये जाने की सूचना तार द्वारा दीक्षित जी ने ही पार्षदजी को दी थी। दीक्षित जी तब बम्बई में थे। यह किसी से नहीं छिपा है कि आज दीक्षित जी केन्द्र के कितने महत्त्वपूर्ण व्यक्ति है श्रीमति इन्दिरा गांधी की राजनीतिक चेतना के पलक-पहरूए माने जाते है। मैंने दीक्षित जी को पहले आज्ञानुसार एक गीत सुनाया फिर गरम गरम वातावरण पर कील ठोक दी। कहा कि "कल परेड देखने वालों में

पार्षद जी भी थे। उनका झंडा गीत आपने सुना या नहीं?"

"दीक्षित जी मर्माहत हो गये। चौके और चाय का प्याला रखते हुए बोले–"पहले क्यों नहीं बताया?कहाँ है वह?" मैंने शिकायत की –"हर साल न जाने हम लोग किस-किस को कौन-कौन सा अंलकार दे देते है। अज्ञात-अपरिचित व्यक्तियों तक को हमने राष्ट्रीय सम्मान दे दिया–पर पार्षद को हम "पद्मश्री" तक नहीं दे सके। प्राइमरी के सर्टीफिकेट जैसी यह उपाधि भी यदि हम पार्षद को दे देते तो यह अंलकार-अलकृंत हो जाता"

"निपट सवेरा था। दीक्षितजी की चाय कड़वी हो गई पर वह शान्त और संयत स्वर में बोले-" किसी ने याद ही नहीं दिलाया वरना कम से कम इतना तो हो सकता था। खैर अब देखेंगे। वैसे मैंने प्रान्त में उनके लिए कुछ करने का बहुत पहले उपक्रम किया अवश्य था। पता नही क्या परिणाम रहा।" उमाशंकर दीक्षित जी का यह उत्तर आधुनिक भारत में राजनीतिज्ञों के चरित्र, दिनचर्या और क्रियाकलापों को दर्शाता है सरकार रूपी मशीन ऐसे पुर्जो से तैयार हुई है जो स्वयं नहीं चलती उसको स्वार्थी, धोखेबाज, मक्कार और असमाजिक तत्त्व अपनी मर्जी से चलाते है। बाल कवि बैरागी की व्यथा, विकलता और विह्वलता असीम तब हुई, जब 26 जनवरी 1972 की रात को श्याम लाल गुप्त 'पार्षद' से पं॰ सोहन लाल द्विवेदी के साथ जब मिलने गये और वहाँ प्रतीक्षा की परन्तु न मिलने पर निराश वापिस आ रहे थे तब रास्ते में एक टैक्सी में आते हुए मिले। वैरागीजी ने पार्षद जी के चरण छूकर अपने को धन्य किया और बोलकर जानना चाहा कि उनकी अपनी प्रतिक्रिया क्या रही जब स्वयं द्वारा लिखित 'झंडा ऊँचा रहे' की धुन विजय चौक की परेड में सुनी। उसका उत्तर उन्होने नहीं दिया। लल्लन प्रसाद व्यास ने उनके कान में बताया कि, ''पार्षद जी के कान करीब-करीब श्रवण शक्ति खो बैठे है"

कैसा मार्मिक क्षण था। यह तो ऐसा हुआ कि व्यक्ति सारे दिन श्रम करके रोटी कमाये और उसका उपभोग न कर सके। पार्षदजी भी उस परिस्थिति में थे कि सारा भारत, इस देश के करोड़ों नर और नारी श्याम लाल पार्षद द्वारा लिखित 'झंडा ऊँचा रहे' की धुन पर झूम रहे हो और स्वयं प्रश्न सूचक भाव में एक टक केवल निहार कर रह जाये।

यह भी एक विडम्बना है कि हमारे देश में सैकड़ों विश्वविद्यालयों में हजारों स्नातक विभिन्न विषयों, कवियों, लेखकों, नेताओ पर शोध कर रहे है पर इस राष्ट्रीय गीत के कवि पर कुछ भी नहीं किया गया। वह श्याम लाल गुप्त 'पार्षद' जो 43 बार देश की स्वतन्त्रता के लिए जेल गया। सन् 1921 में इक्कीस महीने की

सजा हुई थी। जेल में महादेव देसाई, कृष्ण कान्त मालवीय, गोविन्द मालवीय, नारायण प्रसाद अरोडा (वर्तमान संसद सदस्य अर्जुन अरोडा के पिताजी), रघुपति सहाय 'फिराक' रामदास गौड़, रामनरेश त्रिपाठी और मलखान सिंह जैसे नेताओं और विद्वानों के साथ था। इतना प्रगाढ़ और विस्तृत ऐसे बड़ें लोगों से सम्बन्ध होने पर भी श्री 'पार्षद' जी ने निजि लाभ के लिए कभी उनका प्रयोग नहीं किया। देश के प्रधानमन्त्री उनको व्यक्तिगत रूप से जानते थे परन्तु उनसे कभी किसी प्रकार की पहुँच नहीं की। श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' जी अपने वसूलों के इतने दृढ़ थे कि एक बार अग्रेज अफसरों ने उनकी कलम छीन ली थी उसके लिए आपने अग्रेंजों और सरकार से कड़ा संघर्ष किया। कचहरी में केस दायर कर दिया। अपने वसूलों के लिए न्यायालय की कितनी ही पेशिंयाँ भुगती और एक आने के मूल्य वाली कलम पर हजारों रूपये खर्च हो गये। ऐसे थे अपने नियमों के पक्के श्री पार्षद जी जिनको पाकर वैश्य समाज नमन करता है और गर्व करता है उन पर जिन्होनें भारत की स्वतन्त्रता की लड़ाई को नया खून देने के लिए अविस्मरणीय झंडा गीत **'झंडा ऊँचा रहे'** राष्ट्र को समर्पित किया।

भारत सरकार के डाक विभाग ने उनके सम्मान में 4-03-1997 को 1 रू. मूल्य की 4 लाख डाक टिकट जारी की थी।

▲▲▲

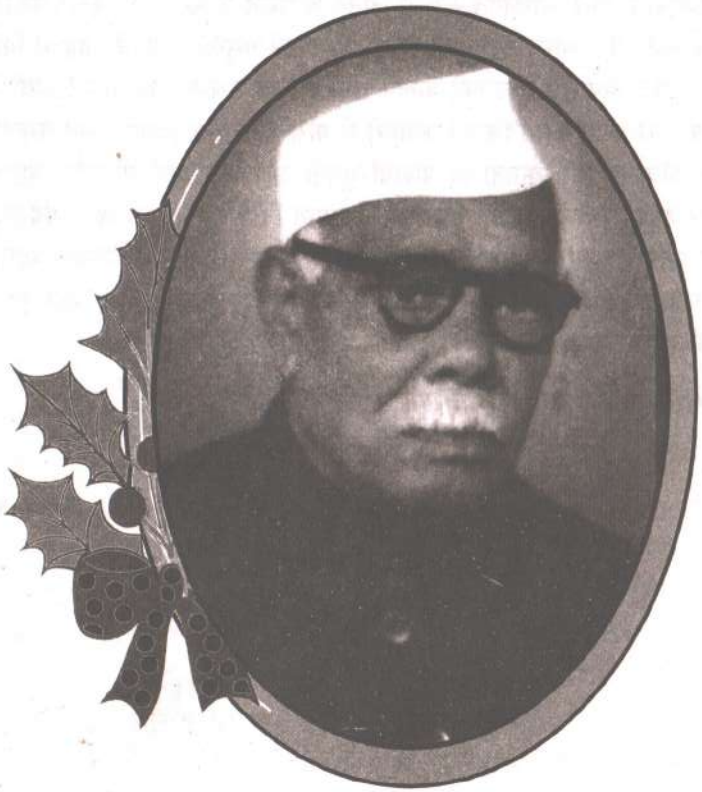

साहित्यकार–बाबू गुलाबराय

बाबू गुलाब राय

बाबू गुलाब राय ने अपने जन्म दिन को इन शब्दों में बताया, ''मेरे जीवन की सबसे बडी असफलता यह थी कि मैने बसन्त पंचमी से एक दिन पहले इस पृथ्वी को भाराक्रान्त किया" सम्वत् 1944 तदानुसार 17 जनवरी 1888 को हुआ। उनके पिता जी का नाम भवानी प्रसाद माता जी का नाम गोमती देवी था। पिताजी उत्तर प्रदेश के मैनपुरी नगर में नौकरी करते थे। उनका जन्म अपने पितृगृह इटावे में हुआ था। जब वे लगभग ढाई वर्ष की आयु के थे तब मैनपुरी आये "मैं अपेक्षाकृत अभावों की दुनियाँ में पला।" यह स्थिति एक नौकरी वाले परिवार में होना साधारण बात थी फिर भी भवानी प्रसाद ने गुलाब राय की शिक्षा में कोई कसर नहीं छोड़ी। उनके पास गुलाब राय के अतिरिक्त अन्य कोई सन्तान नहीं थी। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा हाई स्कूल तक मैनपुरी के मिशन हाई स्कूल में हुई थी। वे कक्षा में साधारण विद्यार्थी ही थे। उन दिनों अध्यापक बात-बात में विद्यार्थियों को सजा दिया करते थे। शिक्षा में साधारण होने के कारण उनको उस निर्दयता को सहन करना पड़ा। उन्होने बताया, "एक अध्यापक महोदय ने एक किवाड़ को जोर से घुमाकर मेरे सर में मार कर अपनी उर्वरा बुद्धि का परिचय दिया था। कही उँगलियों में कलम दबाते थे तो कहीं पेड़ से लटका देते थे। मुर्गा बनाना भी उन विधान की धारा में था। रूल-डण्डा तो उन लोगों का चलता था जो लकीर के फकीर थे या अधिक प्रतिभावान न थें"। हाई स्कूल के बाद बाबू गुलाब राय ऐन्ट्रेन्स की शिक्षा के लिए आगरा नगर में आये। उन्होने मैट्रिक की परीक्षा उसी नगर में आकर दी थी उसके लिए वैश्य बोर्डिंग हाउस में ठहरे थे। संयोगवश अब उनको शिक्षा के लिए यही ठहरने का अवसर मिला। बी॰ ए॰ तक की शिक्षा आगरा कालेज और सैण्ट जोन्स कालेज से प्राप्त की। उनके समय में इन कालेजों में भारतीय और विदेशी अध्यापक पढाते थे। पं॰ कृष्ण लाल मिश्र (भारतीय) डबल्यू॰ टी॰ मलीगन, (इरीश), प्रो॰ एन. सी. नाग (भारतीय), मेजर ओ- डोनैल (आइरिश) बाद में मेरठ कालेज के प्रिन्सीपल, टी॰सी॰ जोन्स, आगरा कालेज के प्रिंसिपल, प्रोफेसर चार्ल्स डाबसन, स्कूल के हैडमास्टर, उनके घर जाया करते थे। प्रो॰ बेनीमाधव सरकार, उनके नाम से आगरा में एक सड़क का नाम पड़ा, प्रोफेसर जोन बगारू राजू, डा॰ हटले और

इरिक आदि शिक्षकों का उन पर प्रभाव पड़ा। डा॰ राजू ने तो बाबू गुलाब राय का जीवन ही बदल दिया। उन्होने बताया, "यदि राजू साहब के सम्पर्क में न आता तो मैं न्याय-विभाग का उच्च अधिकारी अवश्य होता किन्तु लेखक दार्शनिक और उसके फलस्वरूप छतरपूर राज्य का प्राइवेट सैक्रेटरी होने का गौरव न प्राप्त करता।" बाबूजी ने आगरा से बी॰ए॰करने के बाद 1913 ई. में प्रयाग विश्वविद्यालय से दर्शनशास्त्र विषय लेकर एम.ए. किया। 1917 ई. में एल॰ एल. बी. की। कानून की शिक्षा पिताजी की इच्छा को आदर देने के लिए की। बाबूजी की इसमें रूचि नहीं थी। उन्होंने शिक्षा के बाद नौकरी की तलाश आरम्भ की। बाबूजी ने इसके लिए प्रार्थना पत्र भेजने आरम्भ कर दिये। उन दिनों पायनियर समाचार पत्र इसके लिए बड़ा उपयोगी था। इसका 48 रू॰ प्रतिवर्ष का खर्चा था। बाबूजी कहते है कि "हम गरीब लोगों को "पायोनियर देखना उतना ही दुर्लभ था जितना कि अमीर आदमी का स्वर्ग में जाना।'' संयोग से छत्तरपुर रियासत के लिए प्राइवेट सेक्रेटरी का विज्ञापन भी इसी समाचार पत्र में प्रकाशित हुआ था। जिसके आधाार पर उनको यह पद प्राप्त हुआ था। हुआ यूं कि बाबू जी अस्पताल में डा॰ तृषार्तनाथ सिंह से मिलने गये। डा॰ तृषार्तनाथ सिंह उस समय भर्ती वाले बीमारों को देखने गये थे बाबू जी को उनकी प्रतीक्षा करनी पड़ी। समय बिताने के लिए वहाँ उनको पायोनियर समाचार पत्र दिखाई दिया। उस पत्र से यह रिक्त स्थान प्राप्त किया और प्रार्थना पत्र भेज दिया। लम्बे समय तक जब कोई ऊत्तर नहीं आया तो वे समझ बैठे कि उनका प्रार्थना पत्र अस्वीकार हो गया होगा क्योकि इस पद के लिए आवश्यक योग्यता पूर्वीय और पश्चिमी दर्शन शास्त्र में दक्षता दी गई थी। बाबूजी ने पश्चिमी दर्शन-शास्त्र का अध्ययन किया हुआ था पूर्वीय दर्शन शास्त्र का नाम मात्र ज्ञान था। एक दिन अचानक बाबूजी को एक पत्र मिला। जिसमें उनसे इससे पूर्व भेजे पत्र का उत्तर नहीं भेजे जाने का स्मरण कराया गया था।

बाबू गुलाब राय नौकरी के लिए छतरपुर के लिए चल दिया। छतरपुर एक छोटी रियासत मध्य प्रदेश में थी। इस पर विश्वनाथ सिंह जूदेव महाराजा का शासन था। उन दिनों नौकरी कितनी स्थाई होती थी इसके बारे तागें के निर्माण में पिछली सीट क्यों पीछे मुख करके बैठने के लिए बनाई गई, इसकी कहानी इस प्रकार बताई, ''किंवदन्ती है कि पहले पहल एक रियासत के दिवान ने बनवाया था। जिससे वे राजदरबार से लौटते समय पीछे की और मुँह किये हुए यह देखते रहें कि कहीं कोई सवार या हरकारा उनकी बरखास्तगी का परवाना तो नहीं ला रहा है।" बाबू गुलाबराय इस कहानी के साथ बताते हैं कि छतरपुर की रियासत में यह हालत

नहीं थी। बताते है कि वहाँ पर मेहमान भी इस अस्थाईत्व से डरता नहीं था वह वहाँ से अपनी इच्छा से ही वापिस जाता था। बाबू गुलाबराय को दो प्रकार के काम करने पड़ते थे। महाराज के पत्र व्यवहार और मेहमानों की आवभगत आदि। उनके जीवन के दो प्रसंग बड़े महत्वपूर्ण हैं। एक ड्राइवर बहुत तंग करता था हर महीने मोटर का टायर और टयूब बदलवाता था और मील नापने के मीटर को जान-बुझकर खराब रखता था। उसकी सीट कवर के कपड़ों को खरीदकर अपने कुर्ते, पजामें और चद्दरें बनवाता था। बाबूजी ने उसकी अनियमिताओं को सहन नहीं किया और उसे नौकरी से निकाल दिया। उसके स्थान पर दूसरा ड्राइवर रखा। वह कम अनुभवी निकला। उसने महाराजा की मोटर झाँसी के पास नाव से नदी में गिरा दी। इस हानि के कारण बाबूजी को जो दुख: हुआ वह अलग साथ में, महाराज की मीठी झिड़की से उसे लज्जित होना पड़ा। दूसरी बाबूजी की एक भूल थी जिसे उन्होने "मनोरंजक भूल" कहा। रसोई के लिए बीस सेर मोठं की दाल की आवश्यकता थी उसे तार देकर आगरा से मंगवाने का आर्डर भेजा। रियासत के कर्मचारियों ने आगरा नगर से बीस-सेर नमकीन दाल मोंठ भिजवा दी। महाराजा जी रेल से मंगवाई वस्तु को अपवित्र मानते थे। वह बीस-सेर नमकीन दाल मोंठ अन्य लोगों में बाटनी पड़ी।

बाबू गुलाब राय के जीवन में कई उतार चढ़ाव आये। छतरपुर में नौकरी के दौरान उनको भारी नुकसान हुआ। 1927-28 के वर्ष में मेरठ में उनकी धर्म पत्नी की भतीजी की शादी थी। उसकी शादी में शामिल होने के साथ अपने गृह-नगर भी जाने का निश्चय किया। इसके लिए रेल का टिकट खरीदा। महाराजा जूदेव ने ज्योतिष से परामर्श किया और बाबू जी को यात्रा के बारे में बताया कि उस दिन यात्रा अनिष्टकर होगी। क्योंकि धर्मपत्नी को मायके जाना था इस विषय में किसी का परामर्श नहीं माना गया। मेरठ पहँचने के दो रास्ते थे एक आगरा होकर और दुसरा लम्बे रास्ते कानपुर होकर पहुँचते थे। बाबूजी ने परिवार के सदस्यों को मनोरंजन के लिए घूमाने के उद्देश्य से कानपुर के रास्ते की योजना बनाई। नकद रकम के साथ उन्होने पूर्व में खरीदा गया पैतालीस तोला सोना भी साथ लिया। कानपुर नगर में रूकना था क्योंकि वहाँ पर किसी व्यक्ति से उधार दिये पैसे भी लेने थे। कानपुर आकर बाबूजी परिवार के साथ आनन्दराम की धर्मशाला में रूके। शाम को वे परिवार के साथ कानपुर शहर देखने तागों से गये और जब वापिस लौट कर आये तो सारा सोना और नकदी की चोरी हुई मिली। यह नुकसान परिवार के लिए विवाह के आनन्द को समाप्त कर गया। मेरठ पहुँचे तो उस परिवार को रहने के

लिए एक कमरा दिया गया। पत्नी के भाई ने कमरे पर लगाने के लिए ताला दिया तो बाबूजी कहते है कि उसे 'भाग्य की विडम्बना पर हँसी आई।'

1932 ई॰ में महराजा विश्वनाथ सिंह जूदेव का देहावसान हो गया। ब्रिटिश साम्राज्य का भारत में शासन था, इसके लिए वहाँ पोलिटिकल एजेन्ट नियुक्त किया हुआ था। परिस्थिति के परिवर्तन का उसने फायदा तो उठाना था। महारानी बाबूजी को रियासत के अन्य मामलों को निपटाने के लिए रखना चाहती थी परन्तु वह व्यक्ति जो 12 (बारह) वर्ष महत्वपूर्ण पद पर काम कर रहा था अब साधारण रूप में वहाँ कैसे रहता?उन्होने छतरपुर से चले जाने का विकल्प ही चुना। बाबूजी कोई भी काम कर बैठते थे यदि उसमें वे असफल होते तो वे अपनी आलोचना करते हुए अपना ही उपहास करने से नहीं चुकते थे। ''मेरी असफलताएँ'' पुस्तक में उन्होने जीवन के अनेक प्रसंगों का विवरण दिया है। बाबूजी अपने पितृ-स्थान न लौटकर आगरा नगर में बस जाना चाहते थे। छतरपुर छोड़ने से पूर्व वहाँ मकान का प्रबन्ध नहीं किया। पुरे सामान, पशुओं जैसे भैंस और घोड़े आदि के साथ आगरा शहर के रेलवे स्टेशन पर उतर गये। कई दिन मकान तलाश करने में व्यतीत हो गये। उसमें उनको और परिवार को अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। बाबू जी ने एक स्थान पर स्वीकारोक्ति की कि," जब में किसी बात का संकल्प कर लेता हूँ तो उसकी पूर्ति के लिए अन्धप्राय हो जाता हूँ। आवेश-वश आगा पीछा नहीं देखता।" इस आदत ने जहाँ उनको किराये का मकान तलाशने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, वही मकान की भूमि खरीदकर निर्माण कराने के बाद पाश्चाताप करना पड़ा। दलाल के कहने पर उन्होने वह भूमि खरीदी जो बहुत नीची सतह की थी गहरे गड्डे को भरवाने में बहुत खर्च करना पड़ा। सामर्थ्य से अधिक व्यय करने के बाद मकान तैयार हो गया। उस मकान में रहने की पहली समस्या यह थी कि वहाँ पहुँचने के साधन नही थे। रिक्शा और तागें वाले मनचाहे दाम मांगते थे। मार्ग कच्चा और धूल भरा था। यह बात 1939 के वर्ष की है। पानी तो साधारण वर्षा से भी उनके घर की और ही आना था। इस वर्ष अतिवृष्टि हुई। पानी बिना नियंत्रण के आया और मकान का पहला तल्ला तलाब में बदल गया। उसका सिमेन्ट से बना फर्श बैठ गया। वे परिवार के साथ पहली मंजिल पर पहुँच गये। उस स्थिति पर भी अपने किये पर उपहास करते हुए इस प्रकार विवरण दिया, "उन दिनों इतनी गनीमत रही कि ईश्वर की परमकृपा और पूर्वजों के पूण्य प्रताप से सर के ऊपर की छत तो बची हुई थी लेकिन फर्श बैठ जाने से मेरे पैरों तले की जमीन खिसक गई थी। बिना त्याग और तपस्या के घर ही वन बन गया था। कमरों में खाइयाँ और

पहाड़ दिखाई देते और कुछ दिन के लिए सरिता तो नहीं घर सरोवर अवश्य बन गया था।''

बाबू गुलाब राय ने ''मेरी असफलताएँ'' पुस्तक में भाग्य फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरूषम्" वाक्य का कई बार प्रयोग किया है। उन्होने अपनी असफलताओं को दुर्भाग्य होने के कारण माना। वे भाग्यवादी बन गये इसके पीछे मुख्य कारण उनको बार-बार नुकसान ही होना था। उन्होने जिस भी व्यवसाय में हाथ ड़ाला उनको नुकसान ही मिला। उनके लिए उत्तम खेती मध्यम बंज, निकृष्ट चाकरी भीख निदान" कहावत काल्पनिक रही। इसके अनुसार उन्होने अपने क्लर्क मास्टर घसीटेराम के साथ साझे में खेती का काम सर्वप्रथम किया। यह सच था कि उनको वर्ष का गेहूँ और पशु का चारा मिल जाता था परन्तु जो वे खर्च करते थे उससे कम था। बाबूजी अग्रवाल समाज से थे इसलिए स्वयं को व्यापार में निपुण मानते थे। उन्होंने कुछ रूपया ब्याज पर उधार दिया। जिस सेठ के पास रूपया था उसे नुकसान हो गया। इससे ब्याज क्या मिलता मूल भी मारा गया। शेयरों में पैसा लगाया, बीमे की पालिसी ली, रूई और सोने पर मुनाफे के लिये पैसा लगाया, चांदी की सिल्ली खरीदी, परन्तु बाबूजी को किसी भी काम से मुनाफा नहीं मिला।

बाबू गुलाब राय ने अपने बारे में बेवाक लिखा। एक स्थान पर बताया, "मेरे जीवन में अव्यवस्था, अव्यवहारिकता, अदूरदर्शिता, अज्ञान और भुलक्कडपन की मात्रा पर्याप्त रही है। अव्यवस्था ही मेरे जीवन की व्यवस्था है। आदर्शवाद से मैं कोसों दूर हूँ और मैं समझता हूँ जीवन में जो कुछ कर सका हूँ इसी कारण कर सका हूँ।----- मैं अपना समय दार्शनिक चिन्ता में तो नहीं खोता, किन्तु दार्शनिकों की-सी अव्यवस्था मेरे जीवन में अवश्य है।" यह सब रूचि की वस्तु है इसे कोई अवगुण नहीं कहा जा सकता। उनके महान् साहित्यिक कार्यो के सामने इस प्रकार के कार्य गौण हो जाते है। बाबूजी समय के साथ आचरण भी करते थे। पहली अप्रैल को अग्रेजों की बनाई रीति के अनुसार दूसरों को मूर्ख बनाकर आनन्द लेते थे। दो बार की घटना उनके संस्मरणों में मिलती है। एक बार खबर उडा दी कि डा॰ तृषार्तनाथ सिंह मैनपुरी स्टेशन से गुजर रहे हैं। वे उस नगर में लोकप्रिय और सम्मानीय व्यक्ति थे। यह सुनकर रेलवे स्टेशन पर उनके दर्शनों के लिए भीड़ एकत्रित हुए। कई महाशय डा॰ साहब के प्रिय व्यन्जन लेकर आये और दो एक पुराने प्रतिष्ठित बीमार भी उनसे डाक्टरी सलाह लेने आये थे परन्तु उन्होंने नहीं आना था इसलिए नहीं आये। दूसरा संस्मरण एक घड़ी की दूकान से नोटिस निकलवा दिया कि उस दिन घडियाँ मुफ्त मिलगी। आवेदन पत्र शीघ्र भेजें। दो सौ के लगभग आवेदन पत्र प्राप्त हुए। उत्तर में लिफाफे में एक फूल डाल कर भिजवा

दिया। जहाँ बाबूजी दूसरों को मूर्ख बनाकर आनन्द लेते थे वही जब दिल्ली में उनको मूर्ख बनाकर ठगा गया था तो उन्होने उसको छुपाया नहीं। ''हाथ झारि कै चले जुआरी'', 1943 वर्ष में वे दिल्ली आये तब यह हालत बनी। बाबूजी बिरला मंदिर जाने के लिए कुतुब रोड पर तांगा पकड़ने के लिए चल रहे थे। ठगों के ग्रुप ने उनको निशाना बनाया। लाहौरी गेट के पास उनमें से एक व्यक्ति ने आकर उनसे पूछा "बाबूजी आपने सुना। एक हवाई जहाज टूट कर गिर पड़ा है। आप नहीं जा रहे है वहाँ?" आगे आकर उस ग्रुप के दूसरे और तीसरे व्यक्ति ने यही बात दोहराई तब बाबू जी ने एक दिशा में ही पाँच सात व्यक्ति जाते दिखाई दिये। इससे उनको विश्वास हो गया और आखिर में मिले व्यक्ति से पूछा कि कितनी दूर है। उत्तर में कहा कि कोई पचास कदम पर है। यह सुनकर बाबूजी उत्सुकतावश उस के साथ चल दिये। ठगों के ग्रुप के दो व्यक्ति आते दिखाई दिये। साथ वाले ठग ने हवाई जहाज के बारे में पूछा तो उन्होने बताया की उसके हिस्से को अग्रेंज उठा कर ले गये। ठगों ने इस प्रकार बाबूजी का समीप्य पा लिया। बाबूजी जाने को उद्दत हुए तो उन्होने रोककर ताश के खेल देखने को कहा। बाबू जी ने जब कहा कि वे ताश के शौकीन नहीं हैं, तब एक ठग ने कहा, "खेल न देखिये, तो न सही, दो चार रूपये की रेजगारी ही लेते जाइये" उन दिनों दिल्ली में रेजगारी की कमी थी। बाबूजी संवरण मोह नहीं छोड़ सके। दूसरे ठग ने तीन रू. की रेजगारी उनको दी। बाबूजी ने दस रूपये का नोट निकालकर दिया। उस ठग ने उसे सात रूपये ताश के पत्ते पर लगाने को कहा और बताया कि उसका वह जुम्मेदार होगा। ताशों में से दिखाया हुआ पत्ता उठाना था परन्तु वह उठा नहीं सका और ताश वाला 7 रूपये जीत गया। बाबू जी ने जिम्मेदारी लेने वाले से अपने पैसे मांगे तो उत्तर दिया," बाबू साहब अब की बार दाव चूक गया अबकी तरकीब बताता हूँ आपको सात के दस दिलवाऊगाँ।'' उसने एक ताश पर पेन्सिल से निशान लगवा दिया और ताश वाले को दे दिया। बाबू जी की रूचि बढ़ी अब की बार पैंसिल से चिन्हित ताश का पत्ता स्वयं उठाया। बाबू जी ने निशान वाला पत्ता उठाया परन्तु वह वो पत्ता नहीं निकला। क्योकि इस बार वह पत्ता स्वयं उठाया था। उस पर लगे दस रूपये वो हार चुके थे। अब निराशा में उसने 7 रूपये भी मांगने का साहस नहीं किया और 17 रूपये उस जुएं में हार कर जेब में केवल तीन रूपये रखकर वापिस आगरे की और चल दिये। अब दिल्ली की सैर का क्या सोचना था?

बाबू गुलाब राय भाग्यवादी थे। उनको कसौली जाना पड़ा। इसका कारण उनको कुत्ते के नाखुनों से चोट लगी थी। इस घटना के कारण के कारण कसौली की सैर का अवसर भाग्य से प्राप्त हुआ था। आगरा नगर में जीवन के संघर्ष के साथ बाबू जी ने निस्वार्थ सेवायें की। जैन बोर्डिग हाउस के अनाहारी वार्डन का पद

सम्भाला। सैंट जान्स कालेज में हिन्दी विद्यार्थियों को बिना कुछ प्राप्त किये पढ़ाया। इस नगर से प्रकाशित हिन्दी साहित्य की मासिक पत्रिका ''साहित्य सन्देश'' का सम्पादन किया। आगरा की नागरी प्रचारिणी सभा में साहित्य रत्न और विशारद की कक्षाओं का अवैतनिक अध्यापन कार्य किया। बाबूजी ने ''ठोक पीट कर लेखक राज'' में स्वीकार किया है कि कुछ "पुस्तके तो स्वान्तः सुखाय लिखी, शेष पुस्तकों का अधिकाशं में उदर-निमित्त निर्माण हुआ।'' बाबूजी की पुस्तकों की प्रकाशकों से बहुत मांग रहती थी इसी बात से अनुमान लगाया जा सकता है कि वे बहुत उच्च कोटि का लिखते थे। प्रबन्ध प्रभाकर, हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास, विज्ञान वार्त्ता और हिन्दी नाट्य विमर्श की विद्यार्थी वर्ग से बहुत मांग रहती थी। बाबूजी की पुस्तकों में सामान्य विद्यार्थियों से लेकर उच्चतम स्तर-एम०ए० की कक्षाओं के अध्ययन योग्य सामग्री होती थी। बाबू जी ने अनेक निबन्ध लिखे। उनके वे निबन्ध आलेचनात्मक, साहित्यिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक और मनौवैज्ञानिक विषयों को बखुबी विवेचन करते थे। उन्होंने छतरपुर नौकरी के दौरान ही लिखना आरम्भ कर दिया था। लेखन के क्षेत्र में लाने में ''इटावा के मित्रवर सूर्यनारायण और फिरोजाबाद के सुहृदयवर प्रसाद जी का विशेष हाथ था.... पहले पहल मेरे लेखों को इलाहाबाद के विद्यार्थी ने अपनाया।" बाबू जी ने कोई कहानी नहीं लिखी। उन्होनें माना है कि कहानी लेखक एक नई सृष्टि की रचना करता है। उसकी पहली पुस्तक ''पाश्चात्य दर्शनों का इतिहास" 1912 में प्रकाशित हुई। यह दर्शन-शास्त्र पर महत्त्वपूर्ण पुस्तक थी उसके पश्चात् इस प्रकार की शान्तिधर्म, मैत्रीधर्म, गांधीय मार्ग और मन की बातें पुस्तकें लिखी। बाबू गुलाबराय ने 1910 से लिखना आरम्भ किया और जीवन पर्यन्त 50वर्षो तक लिखते रहे। ठलुआ कल्ब 1921 में लिखी गई थी। इसकी साहित्यिक जगत में बहुत आलेचना हुई थी। महान लेखक मुंशी प्रेमचन्द ने इसे 'चार्ल्स डिकन्स' के पिकविक पेपर्स पर आधारित बताया। बाबूजी ने इस पुस्तक की कैसे रचना हुई बताया," ठलुआ क्लब के शीर्षक का सुझाव जेरोम के जेरोम (Jerome K. Jerome) के Idle Thoughts of an Idler से हुआ था। मुशीं प्रेमचन्द के विचारों के उत्तर में बाबूजी ने बताया की उनको उसका लेशमात्र भी आभास नहीं था। बाबूजी ने स्वीकार किया है कि उनकी रचनाओं में महावीर प्रसाद का प्रभाव रहा है।

बाबू गुलाब राय ने बड़ी संजीदगी से कहा कि वे 'ठोक पीठ कर लेखकराज' बनाये गये। परन्तु वे लेखनी के धनी थे और साहित्यिक और शैक्षणन जगत की महान सेवा की। उनका स्वर्गवास वैसाख कृष्ण चतुर्थी सम्वत् 2020 तदानुसार 13 अप्रैल 1963 में हुआ। उन्होंने ''मैनपुरी बगल में छुरी, खाँय सत्तुआ बतावे पुरी" को झुंठला दिया। उनका जीवन यथार्थ से पूर्ण था।

भारत सरकार के डाक विभाग ने उनके सम्मान में 22-06-2002 को 5 रू. मूल्य की 4 लाख डाक टिकट जारी की ▲▲▲

कर्मयोगी–सेठ घनश्यामदास बिड़ला

पुरूषार्थी-कर्मयोगी – घनश्याम दास बिड़ला

घनश्याम दास बिडला का जन्म 14 अप्रैल 1894 तदानुसार विक्रम सम्वत् 1951 चैत्र शुक्ल नवमी, दिन शुक्रवार को हुआ था। उनके पिता जी का नाम बलदेव दास बिडला और माता जी का नाम योगेश्वरी देवी था। वे अपने पितामह शिवनारायण के लाडले थे और उनकी देख रेख में उनका बचपन बीता था। यह परिवार वैश्य समाज के महेश्वरी वर्ग का था और शांडिल्य गौत्र से थे। विडला या बिरला यह अपने आदि पुरूष के नाम ''बेहड सिंह'' से जो राजस्थानी लहजे से बेहड़ा, बेहडला, बेडला से बदलता हुआ बना। उनके वंशज सम्वत् 1650 में शेखावटी (राजस्थान) के बथोली ग्राम से आकर नवलगढ़ नगर में बसे और वहाँ से पिलानी में निवास करने लगे। व्यापार का धन्धा था। शिव नारायण के पितामह उदयराम जी के समय तक बिडला परिवार में पर्याप्त धन संपदा रही, लेकिन शिवनारायण के पिता शोभाराम के समय में सेठाई का ह्रास हो गया। भाइयों में सम्पत्ति का बटवारा, देश में राजनीतिक उथल-पुथल और अकाल पडना इसका कारण थे। परिवार की आवश्यकता की पूर्ति के लिए शोभाराम ने अजमेर में गनेडीवाला की पैडी पर 301/- रू० प्रतिवर्ष के वेतन पर नौकरी की। उनका काम लेन देन का था। जब शिवनारायण की आयु केवल सोलह वर्ष थी पिता जी शोभा राम की मृत्यु हो गई। इससे शिव नारायण के जीवन में उथल पुथल मच गई। उसको कुछ विशेष करने की ललक उत्पन्न हुई और पिलानी नगरी छोड़कर व्यापार केन्द्र बम्बई जाने की योजना बनाई। अपने साथ मानकराम जी के पौत्र सुखदेवदास को लेकर 23 वर्ष की आयु में अपने पुत्र बलदेव को जो 4½वर्ष की आयु का था, छोड़कर बम्बई को चल दिये। यह यात्रा बड़ी जोखिम भरी बीस दिन ऊँट की पीठ पर सवारी करते, रात धर्मशाल या खुले में बिताने के बाद खंडवा पहुचें और वहाँ पर रेलगाड़ी से बम्बई पहुँचे। शहर अन्जान था। परन्तु जो मारवाडी राजस्थान छोड़कर आ रहे थे तो उनको सहयोग प्राप्त हो जाता था। शिवनारायण आरम्भ में 'पिलानी मडले' वासे में रूके और विभिन्न व्यवसायों का अध्ययन किया। उन दिनों अफीम के अगामी भावों पर सट्टा लगता था। मै. चेनीराम-जेसराज की गद्दी के

एक कोने पर बैठ कर अपना अलग काम शुरू कर दिया। उनका भाग्य उदय होना था। सट्टा उनको आमदनी देता रहा और थोड़े समय में ही लाखों रूपये कमा लिए और सेठ कहलाने लगे। सेठ कहलाये और पिलानी में हवेली न हो यह बात जँचती न थी। हवेली बनवाकर उसमें कुँआ खुदवाया तो उसमें मीठा पानी निकला। इससे सेठ शिवनारायण जी की ख्याति में वृद्धि हुई। उनके पिता गनेडीवाला के यहाँ नौकरी करते थे तो उन पर ऋण हो गया था। इन्होने ब्याज सहित एक मुस्त अदा करके लिखित प्रति ली जो बाद में काम आई जब दोबारा गनेड़ीवाला ऋण का तगादा करने उसके पास आये थे। हवेली बनवाकर पुत्र बलदेव का बारह वर्ष की आयु में विवाह कर दिया और वापिस बम्बई चले गये।

बम्बई आकर मै. शिवनारायण बलदेवदास नाम से स्वतन्त्र रूप से अपनी फर्म की स्थापना 1879 ई॰ में की। अफीम के व्यापार में लाभ ही लाभ मिला। 1883 में बलदेवदास भी बम्बई आकर व्यापार के दाँव पेच सिखने लगे। कमाई के संचित पैसों से 1891 में बम्बई की फानस बाडी में मकान खरीद लिया। तीन पौत्र शिवनारायण के सामने ही पैदा हो गये थे। एक पौत्र जुगल किशोर का विवाह 11 वर्ष की आयु में फतेह पुर के सेठ के यहाँ किया। बारात में एक हाथी, दस रथ, बीस घोड़े और अनेकानेक ऊँट ले गये थे।

ला॰ शिवनारायण का मुम्बई में स्वास्थ गिरने लगा तो वे पिलानी वापिस आ गये। बच्चों की शिक्षा का कोई प्रबन्ध इस गाँव में नहीं था। दादा जी ने पिलानी में पाठशाला खोल दी। इससे घनश्याम दास और रामेश्वरदास को शिक्षा के साथ गाँव के अन्य बालको को भी लाभ मिलना आरम्भ हो गया। इस गाँव में शिक्षक की नियुक्ति की भारी समस्या थी। पहले अध्यापक रामदेव जी थे। अग्रेंजी भाषा भी गाँव में ही सीखी। इसके लिए दूसरा अध्यापक भिवानी से बुलाया गया। इतना कुछ सीख लेने के बाद घनश्याम जी को नौ वर्ष की आयु में कलकत्ता भेज दिया गया। दादाजी को ज्यादा पढ़ाना ठीक नहीं लगता था उनका विचार था कि अधिक पढ़ने से बालक हाथ में नहीं रहता। अन्य लोगों के बार-बार सुझाव के कारण, उनको विशुद्धान्नद सरस्वती विद्यालय में दाखिल करवा दिया। घनश्याम जी का मन स्कूल में नहीं लगा। वे बस्ता लेकर पाठशाला के लिए निकलते परन्तु कलकत्ते की सड़कों और गलियों में घूम कर समय पूरा करके घर वापिस आ जाते। इस भटकाव से घनश्याम जी को जीवन की वास्तविकता के दर्शन हुए, ज्ञान के संस्कार पिलानी में जो प्राप्त हुए वही आगे जाकर फलिभूत हुए। सन् 1906 में रामेश्वर दास और घनश्याम दास के विवाह हुए। इस मौके पर उनकी आयु केवल बारह वर्ष थी पत्नी

का नाम दुर्गादेवी था जो सेठ राम प्रसाद सोमानी जी की पुत्री थी। सेठ जी मारवाड़ के ही चिड़ावा के रहने वाले थे। कलकत्ते में जूट हैशियन और शेयरों आदि के प्रसिद्ध व्यापारी थे। विवाह के तुरन्त पश्चात् 13 वर्ष की आयु में पिताजी के साथ व्यवसाय में लग गये। घनश्याम जी नियमवद्ध और नियमित कार्यशैली वाले थे इसे उन्होने अपने पिता जी से सिखा था। उनके दादाजी को तपेदिक हो गया और 1909 में उनकी मृत्यु हो गई। परिवार में खुशी और गम दोनों समानान्तर चले। 11-7-1909 में घनश्याम एक पुत्र के पिता बन गये जिसका नाम लक्ष्मी निवास रखा गया। दुर्भाग्य से प्रसव से स्वास्थ बिगड़ता चला गया। बीमारी तपेदिक निकली जिसका उन दिनों कोई इलाज नही था जिससे मृत्यु हो गई।

घनश्याम जी के दिल और दिमाग पर इन दो मौतो का भारी प्रभाव पड़ा। एक खालीपन सा महसूस करने लगे थे। उस अवधि में सहारा श्रीमद-भागवत और गीता ने दिया। इन धार्मिक पुस्तकों को पढ़ने की आदत अब बनी तो यह उनके सारे जीवन में जारी रही। कर्म करते रहने का इरादा इस आयु में ही आरम्भ हुआ। घनश्याम जी ने अब पिताजी के व्यवसाय के साथ अन्य व्यवसायो का भी बारीकी से अध्ययन किया। उन दिनो 'चान्दी' का व्यापार, बोरी हैसियन का निर्माण और बिक्री पूरी तरह अग्रेंजो के कंट्रोल में था। भाई रामेश्वर दास ने पिताजी वाला व्यापार छोड़कर स्वयं दलाली करनी आरम्भ कर दी। इससे सम्पर्क में वृद्धि हुई और मिल मालिकों के मुनाफे और आमदनी की रिपोर्ट से वे उनकी श्रेणी में क्यों नहीं है यह प्रश्न स्वयं से पूछा करते थे। इस सोच के साथ एक दिन घनश्याम दास मारवाड़ी वेश में दो लांग की किनारी दार धोती, कमीज और पैरों में मौजे के साथ-ब्रिटिश जूट स्टर्लिंग कम्पनी के दफ्तर में पहुँचने के लिए लिफ्ट के अन्दर दाखिल हुए । वे इस भवन की सबसे ऊपर वाली मंजिल पर जाना चाहते थे। लिफ्ट में सूट पहने अग्रेंज भी थे। उसने उसकी ओर ऐसे घूरा जैसे वह उसका दुश्मन है। घनश्याम जी ऊपर वाली मंजिल पर पहुँचकर बोले कि उन्हे इस फर्म के जूनियर अफसर से मिलना है। घनश्याम जी को प्रतीक्षा करने को कहा और एक बैंच पर बैठने के लिए इशारा किया। यह उसकी प्रतिष्ठा के अनुकूल नहीं था। क्योंकि वह बैन्च चपरासी के बैठने के लिए था। वे खड़े ही प्रतीक्षा करने लगे। इसके बाद जो सन्देश आया वह जले पर नमक छिड़कने जैसा था कि अग्रेंज ऑफिसर उससे नही मिलना चाहता। वह तुरन्त ऑफिस से चला जाय यही उसके लिए बेहतर होगा।

इस घटना के बाद घनश्याम जी ने प्रतिज्ञा ली कि वे भविष्य में दलाली का काम नहीं करेंगें। घनश्याम जी के जीवन की यह घटना महात्मा गांधी के जीवन में

दक्षिणी अफ्रीका में अग्रेंज द्वारा लगाये गाल पर थप्पड़ के समान थी। यह नियति का अनुग्रह ही है कि महात्मा गाँधी जी की तरह ही घनश्याम दास के जीवन में यह परिवर्तन का कारण बनी।

घनश्याम जी अब ऐसे समर्थ हो गये कि वे जीवन और व्यापार की पेचीदगियों को समझने लगे थे। उन्होने समझ लिया था कि "मनुष्य के अत्यन्त साधारण आचरण से पता चल जाता है कि उसमें सच्चाई कहाँ तक है। जो छोटी बातो में सच्चाई का प्रयोग नहीं करता, जो अपने सारे आचरणों के सम्बंध में अव्यवस्थित है, ऐसे मनुष्य के जीवन से किसी बड़ी बात की आशा नहीं करनी चाहिए। **जीवन की भव्यता, उसकी सुन्दरता की किरण व्यवस्था से ही फूटती है अव्यवस्था से नहीं**'' यह उनके जीवन का 1915 का वर्ष था इसमे एक कटु घटना हुई। एक क्रान्तिकारी जिसको पहले आतंकवादी कहते थे बिपिन गांगुली से घनश्याम दास जी की दोस्ती ने भयंकर संकट खड़ा कर दिया। गागुंली का एक मित्र रोड़ा कम्पनी में काम करता था। उसके पास विलायत से हथियारों की एक खेप आयी थी उसने माल उतारते हुए हथियारों से भरी दो पेटियाँ कहीं छिपा दी और विपिन गांगुली के बताये हुए पते पर उन्हें भिजवा दिया गया। एक पेटी में पिस्तौल थे दूसरे में कारतूस। वास्तव में यह सारा समान गांगुली के कब्जे में था इससे पहले उसे यह खबर मिले कि पुलिस छापा मारने आ रही है, उसने कारतूस की एक पेटी घनश्याम के कमरे में छिपवा दी। उस कमरे से भी वह पेटी कहीं और भेज दी गई। पेटी इधर-से उधर जाती कि पीछे-पीछे पुलिस पहुँचती। अतं में घनश्याम जी के एक मित्र देवीदयाल सर्राफ ने कुलियों का भेष रखा और उस पेटी को सिर पर रखकर हुगली में फेंक आये। पुलिस वालों ने हुगली क्षेत्र के सारे बग्घीवालों को घेरा और घमकाया। फिर उन्हीं में से कुछ लोगों ने पुलिस को बता दिया कि एक पेटी इधर से उधर पहुँचायी गई है। इस पर विपिन गांगुली के सारे मारवाड़ी मित्रों की तलाशी ली गयी। घनश्याम दास जी के अनन्य साथी प्रभुदयाल हिम्मतसिंह के घर से क्रांतिकारी अतुलनाथ के पत्र बरामद हुए। प्रभुदयाल को दुमका में चार साल के लिए नजर बन्द कर दिया गया। "उन दिनों बिड़ला परिवार कालीगोदाम के रिहायसी कमरे छोडकर जकरिया स्ट्रीट के कोने पर स्थित छाजू राम चौधरी के मकान में किरायेदार हो गया था। पुलिस ने घनश्याम को गिरफ्तार करने के लिए, उस मकान पर और काली गोदाम की गद्दी पर एक साथ छापा मारा। संयोग से घनश्याम दास छुटिट्या मनाने उटकमंड चले गये थे। परिवार ने उसको यह खबर भिजवा दी और ये भूमिगत हो गये। कलकत्ता के डा॰ सर कैलाश चन्द्र बोस के बिडला परिवार और

पुलिस अधिकारी दोनों से अच्छे सम्बन्ध थे। उन्हीं के आश्वासन और कोशिशों से घनश्याम दास जी के नाम निकला हुआ वारंट रद्द हुआ।अब घनश्याम गम्भीर हो गये थे। परिवार में लक्ष्मी निवास के बाद चन्द्रकला पुत्री और दूसरे पुत्र कृष्णकुमार का जन्म हो जाने के बाद परिवार का उत्तरदायित्व बढ़ गया था। जनवरी 1918 को उनके पिता जी को 'रायबहादुर' की उपाधि से विभूषित किया गया। परिवार का सम्मान बनाये रखना भी उसकी जिम्मेदारी थी। इसलिए अब केवल व्यापार-व्यवसाय में अटूट ध्यान देना आरम्भ कर दिया था।

1919 में प्रथम महायुद्ध समाप्त हो गया था। एक आश्चर्य जनक फैसला लिया। उन्होने इस वर्ष एक कपड़ा और एक जूट मिल लगाने के लिए उसके शेयर चालू किये। दलाली के काम में अपनी ईमानदारी और उसूलों के आधार पर बड़ा नाम कमा लिया था। उससे इसके शेयर अप्रत्याशित रूप से इतने अधिक बिके कि अग्रेंज उद्योगपति घबरा गये। उन्हें लगने लगा कि उद्योग की बागडोर उनके हाथों से छूटकर भारतीयों के हाथ में चली जायेगी। देश के वित्त साधन पर उन अग्रेंजों का पूरा कब्जा था। पहले हथकडें में इंपीरियल बैंक से कार्यशील पूँजी (वकिंग कैपिटल) का प्रार्थना पत्र अस्वीकृत करा दिया। अंतर्देशीय जल परिवहन के भाव बिड़ला उद्योगों के लिए बढ़ा दिये। जूट मिल लगाने के लिए जमीन खरीद ली थी परन्तु अग्रेंजो की एक कम्पनी 'एंड्रुज' ने उस जमीन के बीच का हिस्सा अपनी राजनीतिक शक्ति का प्रभाव प्रयोग करके डरा धमका कर ले ली। इससे बिडला का जूट मिल वहाँ स्थापित नहीं हो सका। दूसरी जगह लेकर मिल स्थापित किया और पुरानी जमीन के मालिक पर मुकदमा किया। प्रिवी कौंसिल तक मामला गया और जीत भी गये। इस केस से घनश्याम दास को यह सीख मिली कि अग्रेंजो के असंवैधानिक हथंकडे को मुकदमों के द्वारा सुलझाया जाये। इसके लिए इन्होने बहुत ऊँची प्रैक्टिस करने वाले सालिस्टर देवी प्रसाद खेतान को वार्षिक परिलाभ के आधार पर रख लिया। इसका अच्छा परिणाम यह हुआ कि व्यापार का सारा काम कानून के अनुसार पक्का बनता चला गया। उस सालिस्टर की सलाह के अनुसार कम्पनियाँ बनाकर काम आरम्भ किया जाता और उस कम्पनी में परिवार के किसी भी सदस्य की जिसने शेयरो में पैसा लगता उसको उतना ही लाभ प्राप्त होता था। इससे परिवारिक साझेदारी में जो झगडे पैदा होते है, इस परिवार के सदस्यों में आपस में नहीं हुए। अग्रेंजो ने एक और तरीके से भारतीयों द्वारा उद्योग स्थापना में कठिनई पैदा की। वह भारतीय मुद्रा और ब्रिटिश मुद्रा के मुल्य-तुलना में। जब कोई आधुनिक मशीनरी विदेश से आयात की जाये तो वह बहुत महंगी

पड़ती थी। इन सभी कठिनाईयों का सामना करने का साधन घनश्याम दास बिड़ला को उद्योगों में संगठन दिखाई दिया। धीरे धीर इस दिशा में काम किया तो 1927 ई॰ में इंडियन चैम्बर औंफ कामर्स एडं इन्डस्ट्रीज की स्थापना हुई। वे उसके सक्रिय सदस्य थे बाद में 1930 में उसके अध्यक्ष भी बने। 1921 में बंगाल लेजिस्लेटिव कौसिल के सदस्य मनोनीत हुए। 1923 में मालवीय द्वारा स्वराज्य दल का गठन किया गया। उन्होनें सुप्रसिद्ध विद्वान भगवान दास के पुत्र श्री प्रकाश जी के विरूद्ध चुनाव लड़वाया और वे विजयी रहे।

1915 के अन्त में महात्मा गांधी दक्षिणी अफ्रीका से स्वदेश लौट आये और भारत देश की स्वतन्त्रता के लिए काम करने के लिए कांग्रेस पार्टी का नेतृत्व सम्भाला। घनश्याम दास को क्रान्तिकारियों के हिसांत्मक रूप से शासन के विरोध की जानकारी थी। गांधी जी उनकी इस प्रकार की कार्ववाही को उचित नहीं मानते थे। वे अहिंसात्मक आन्दोलन चलाकर अग्रेंजों को भारतीयो को राजनीतिक स्वतन्त्रता देने के लिए मजबूर करना चाहते थे। घनश्यामदास गांधी जी की नीतियों के प्रबल समर्थक बने। गांधी जी के व्यक्तित्व का धार्मिक पक्ष जो बुनियादी तौर पर नैतिक था इससे वे प्रभावित हुए। इधर बिडलाजी ने अग्रेंजो द्वारा आर्थिक शोषण का बारीकी से विश्लेषण कर देश में देसी माल बनाने का प्रयास आरम्भ कर दिया था उधर उसी उद्देश्य से महात्मा गांधी ने विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करने के आव्हान के साथ लोगों के मन में यह बात समा दी कि हर विदेशी वस्तु दासता की प्रतीक है। इससे आत्म सम्मान की चेतना जगने लगी थी। घनश्याम दास जी का यह लक्ष्य अपने लक्ष्य के समान था। इस कारण घनश्याम व्यापारियों का समर्थन प्राप्त कर पाये। घनश्याम दास ने पाया था कि अग्रेजी सरकार ने अपने देश के उद्योगों को प्रगति प्रदान करने के लिए भारतीय उत्पादित वस्तुओं पर अधिक टैक्स लगाया था अग्रेंजी वस्तुओं पर कम टैक्स होने से बाजार में सस्ते दामो पर उपलब्ध हो जाता था और ग्राहक उनको ही खरीदते थे। अग्रेजों ने दशे मे काफी पूजी-निवेश कर रखा था इससे देश से अर्जित सारा मुनाफा इगलैंड में चला जाता था।

घनश्याम दास ने अग्रेंजो द्वारा अपनाई इस 'असमानता की नीति' को व्यापारी वर्ग की ओर से देश के शासन से इस नीति को बदलने की मांग की। इसी प्रकार की मांग काँगेस पार्टी अपने विभिन्न आन्दोलनों में करती थी। इससे समाज के हर वर्ग में खलबली मच गयी थी। आये दिन जुलुस निकलते थे। ब्रिटिश शासन ने 'इंगलैन्ड' में द्वितीय गोल मेज काग्रेंस का सुझाव दिया। गांधी जी इस कान्फ्रेस में जाने के लिए तैयार नहीं थे। वे प्रथम गोलमेज कान्फ्रेस के परिणम से क्षुब्ध थे।

घनश्याम दास जी ब्रिटिश साम्राज्य और काग्रेंस पार्टी के बीच पुल का काम करने लगे थे। एक और वे काग्रेंस को ब्रिटिश नीति और कार्यक्रमों की सूचना देते दूसरी और ब्रिटिश शासन को गांधी की नीति को अपनाने के लिए तैयार करने के लिए वार्तालाप करते थे। इस प्रकार का क्रम घनश्यामदास जी अपने व्यापार की उन्नति और विकास को निरन्तर बनाकर चलाये हुए थे। 19-01-1922 में इन्होने बंगाल के दो समाचार पत्र 'द बंगाल' और 'न्यू एम्पायर' खरीद लिए। ये दोनो पत्र राष्ट्रीय विचार धारा के मुख पत्र बने। सम्पादकीय में घोषण की थी कि 'न्यायोचित और सही बात के लिए अडकर खडे होना, ठीक और शुभ घड़ी में खड़े होना, और सही ईमानदार भावना के साथ खड़े होना यही हमारा संकल्प है।"

घनश्याम दास जी की दूसरी पत्नी महादेवी का स्वर्गवास 1926 में फिर उसी जानलेवा तपेदिक के कारण हो गया था। आगे शादी न करने का फैसला उन्होने यह कह कर किया कि मेरे पास बहुत से काम हैं–''स्वराज का बीहड पथ और उद्योगों को सम्हालना।'' इसी वर्ष कलकत्ता में अभूतपूर्व साम्प्रदायिक दंगा जकरिया स्ट्रीट स्थित शिव मंदिर और नाखुदा मस्जिद के पास मोहल्लों में हुआ जो उनके प्रयासों से शांत हुआ। समाज सेवा में हरिजन सेवा सक्रिय रूप से की। 18-3-1939 को दिल्ली में बिडला मन्दिर का गांधी जी के हाथो उदघाटन हुआ तो हरिजनों को प्रवेश की स्वतन्त्रता थी। शिक्षा के क्षेत्र में घनश्यामदास का कार्य इतिहास बन गया–पिलानी में बिड़ला इंस्टीटयूट आफ टेक्नोलोजी एंड साइन्स, तकनीकी शिक्षा संस्थान, एक पब्लिक स्कूल, एक लड़कियों और एक लड़कों का हायर सैकन्ड्री स्कूल, नैनीताल में एक पब्लिक स्कूल, आनन्द का विश्वकर्मा महाविद्यालय, भिवानी का टेक्नालाजिकल इंस्टीटयूट आफ टैक्सटाइल और रांची में बिडला स्कूल आफ टेक्नालाजी एंड सांइस आदि मुख्य है। वे निर्बाद्ध चलते रहे इसके लिए बिडला एजुकेशन ट्रस्ट की स्थापना की। धार्मिक प्रवृति के घनश्याम दास नित्य भगवत गीता का पाठ करते थे। रामचरित् मानस की चौपाइयाँ उनको याद थी जिनको वे अपने व्याखानों में उद्धृत करते थे। कदरियाँ महादेव मन्दिर के आधार पर ही पिलानी में मंदिर बनाने का निश्चय किया। पिलानी में केवल विद्या का ही वातावरण था। धर्म का भी कार्यक्रम विद्यार्थियों के जीवन में लाने के लिए 6-2-1968 को परिसर तैयार करवाया और नाम 'शरदेय पीठ' रखा। इसमें दुर्गा के अनेक रूपों के दर्शन उपलब्ध है।

घनश्यामदास ने सम्पदा का अर्जन प्रचुर मात्रा में किया। साथ ही देश के स्वाधीनता सग्राम में गांधी की हर प्रयोजनों के लिए खुले दिल से दिया। सी॰वी॰

रमन को नोबेल पुरूस्कार प्राप्त हुआ तो उन्होने खुले आम स्वीकार किया था। कि घनश्याम दास ने विज्ञान के उपकरण खरीदने के लिए उसे पैसा दिया था। वे स्वयं को धन के बारे में ट्रस्टी कहलाना पसन्द करते थे। यदा-यदा वे युधिष्ठर के कथन को याद किया करते थे जो इस प्रकार है–

यज्ञाय सृष्टानि धनानि धात्रा, यज्ञाय सृष्ट : पुरूषों रक्षिता च
तस्मात सर्व यज्ञ स्वोपयोज्यं, धन न कामाय हितम् प्रशस्तम्

घनश्यामदास शंकराचार्य को हिन्दू धर्म का रक्षक मानते थे। वे 77 (सतहतर) वर्ष की आयु में केदारनाथ और बद्रीनाथ धामों के दर्शन के लिए गये। केदारनाथ की खड़ी चढाई लगभग 16 कि॰मी॰ है। बिना अन्य किसी सहायता के वे मंदिर गये। उनका मानना था कि तीर्थ यात्रा को बिना गाँठ का डंडा हाथ में लेकर चलना चाहिए। फिर गंगोत्री और जमनोत्री की यात्राऐं की। केदार नाथ का प्राकृतिक वातारवरण इतना अच्छा लगा कि वे पुन: 90 वर्ष की आयु में 1982 की गर्मियों में वहाँ गये।

15 अगस्त 1947 को देश को स्वाधीनता प्राप्त हो गई थी। घनश्याम दास ने दशे की गरीब जनता की दशा सुधारने के लिए सरकार को सुझाव दिये और योजनाओं के लिए एक विस्तृत ब्लयु प्रिन्ट पेश किया। अपने उद्योगों की वित्तिय आवश्यकता पूर्ति के लिए 1952 में युनाइटेड कामर्शियल बैंक की स्थापना की। जिस प्रकार व्यापार में स्वयं फैसले के लिए स्वतन्त्र थे उसी प्रकार अपने पुत्रों को स्वयं ही फैसले लेने को प्रेरित करते थे। 1958 में हिंडालको की स्थापना रिहन्द बाँध से प्राप्त बिजली के प्रयोग के लिए की थी। 1960 में मैसूर सिमेन्ट कारखाना चालू हो गया था। पुत्र कृष्णकुमार ने रत्नाकर शिपिंग कम्पनी की स्थापना की। सन् 1962 से बिडला परिवार के व्यापार उद्योग को 100(सौ) वर्ष पुरे हो गये थे। शताब्दी वर्ष धूमधाम से मनाया गया। पौत्र आदित्य बिड़ला ने इस परिवार के उद्योगों को अन्तराष्ट्रीय बना दिया। सर्व प्रथम बैंकाक में 'इडोलाई सिंथेटिक्स कम्पनी लि॰' ने काम आरम्भ किया। आठवें दशक तक इस समुह की देश और विदेश में दो सौ इकाइयाँ हो चुकी थी।

घनश्यामदास बिडला जी का देहावसन 11 जून 1983 को विदेश में लन्दन के पार्क टावर्स फलैट की बिल्डिंग में हुआ। उसकी इच्छा के अनुसार उनका दाह सस्कार लंदन के गोल्डर्स ग्रीन स्थान पर हुआ। उनकी अस्थियाँ गंगोत्री में जल प्रवाहित की गई। मृत्यु से पूर्व घनश्याम दास बहुत मचलते से रहते और अचानक कंही भी देश और विदेश की यात्रा पर चले जाते थे। मौसम की कठोरता से बचने

के लिए रमणीय और प्रिय मौसम जिस स्थान पर होता वहाँ चले जाते थे। ऊँट की पीठ पर यात्रा का सफर करके जो व्यक्ति कलकत्ता और बम्बई पहुँचा था वह पलक मारते वायुयान लेकर उड़ जाया करता था। घनश्यामदास बिडला चैत्र की रामनवमी को पैदा हुए थे इस कारण परम महान् भाग्यवान माना गया था जो आज उनके बिड़ला एम्पायर की हल्की सी झलक प्राप्त करने के बाद सच जान पड़ता है। उसका पूरा अध्ययन करने में तो कितना समय लगेगा, कहना कठिन है। वैश्य समाज को ऐसे कर्मवीर पुरूषार्थी पर गर्व होना स्वाभाविक ही है।

भारत सरकार के डाक विभाग ने उनके सम्मान में 11-6-1984 को 50 पैसे मूल्य की 20 लाख टिकटें जारी की थी।

▲▲▲

परोपकारी–सेठ रामकृष्ण डालमिया

कर्मयोगी–श्री रामकृष्ण डालमिया

रामकृष्ण डालमिया कर जन्म 7 अप्रैल 1893 ई॰ को राजस्थान प्रान्त के खेतड़ी जिले के चिड़ावा गाँव में हुआ था उनके पिता जी का नाम हरजीमल और माता जी का नाम जडिया देवी था। उनके एक पूर्वज काशीराम जी ने भिवानी शहर में एक मंदिर बनवाया था जो काशीराम जी का मंदिर के नाम से लम्बे समय तक जाना जाता रहा। डालमिया उपनाम इस परिवार के डाडमा गाँव से निकासी से पड़ा। जो दादरी नगर के समीप है परन्तु उनका गौत्र गर्ग है। पाँच वर्ष की आयु में चिडवा में पढ़ना आरम्भ किया। उनको गुरू झाबरमल पढ़ाते थे 9 वर्ष की आयु में वहाँ की शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् कलकत्ता के विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय में प्रवेश लिया। रामकृष्ण डालमिया पढ़ाई में बहुत तेज थे। गणित में निपुणता के कारण 11 वी कक्षा से 9 वी कक्षा में प्रोन्नति मिली। उन दिनों में कक्षाओं का स्तर उल्टा चलता था। ला॰ हरजीमल या तो नौकरी करते थे या स्वतन्त्र रूप से रोजगार करते थे। आरम्भ में रामकृष्ण डालमिया के मामा के साथ कलकत्ता में काम किया। उसी समय रामकृष्ण की शिक्षा छूट गई और मामा के यहाँ 10 रू॰ मासिक जेब खर्च पर नौकरी शुरू कर दी। तत्पश्चात उत्तरपाडा में चले आये। वहाँ पर उन्होने कपड़े की दुकान खोली। रामकृष्ण कलकत्ता से साईकिल पर कपडे के टुकडों के बड़े-बड़े गठ्टर लादकर उत्तरपाढा ले जाता और गली-गली फेरी करता था। ला॰ हरजीमल ने अपने एक सम्बन्धी के साथ बिहार के दानापुर में गल्ले की दुकान खोली। उस चलते व्यवसाय को अपने रिश्तेदार को देकर चीनी के मिल की स्थापना की। उनके पिताजी की मृत्यु 15 सितम्बर 1913 ई॰ को 44 वर्ष की अल्पायु में हो गई थी। उस समय रामकृष्ण की आयु लगभग 20 वर्ष थी उनके एक छोटे भाई जय दयाल डालमिया थे तब उनकी आयु केवल 11 वर्ष थी। परिवार का सारा उत्तरदायित्व रामकृष्ण डालमिया पर आ पड़ा। कमाई कम होने के कारण आर्थिक परिस्थिति अच्छी नहीं थी। एक बार उन्होने एक चचेरे भाई से 5 रू॰ उधार मागें तो उन्होनें देने से इन्कार कर दिया। रामकृष्ण डालमिया ने अपनी माता जी के बारे में अपनी आत्म कथा में एक संस्मरण में लिखा, "मेरी माँ को दमे का पुराना रोग था। मैंने कलकत्ता में खर्च की चिन्ता किये बिना अच्छी चिकित्सा का प्रबन्ध किया, हालाकि उस समय मैं गम्भीर आर्थिक कठिनाईयों से गुजर रहा था। एक बार उनकी। हालत गम्भीर हो गई। जो वैद्य जी उनकी चिकित्सा कर रहे थे वे बोले कि "अब आशा नहीं रही, वे किसी समय भी शरीर त्याग कर सकती है।'' मैं जल्दबाज

हूँ। मैंने शवयात्रा के लिए जैसे लाल कपड़ा ख्शरीदना इत्यादि इत्यादि, सारा प्रबन्ध कर लिया। सब चीजें देखकर मेरी माँ को भारी दुख हुआ। वे बोली, ''क्या किसी भी बेटे को ऐसा काम करना चाहिये था?उस घटना के बाद वे 25 वर्ष तक जीवित रही।" रामकृष्ण डालमिया ने अपनी माता जी जडिया देवी के लिए काशी नगरी में गंगा नदी के तट पर बहुत सुन्दर निवास स्थान बनवाया। जहाँ पर 93 वर्ष की आयु में 6 दिसम्बर 1957 को उनका स्वर्गवास हुआ। रामकृष्ण की दो बहनें थी। बड़ी बहन का नाम बसन्तीबाई, उनके साथ ही रही। छोटी बहन गोदावरी माता जी के साथ काशी में ही रहती थी। रामकृष्ण डालमिया का पहला विवाह ग्यारह वर्ष की आयु में नर्वदा से हुआ जो उनसे 10 महिने आयु में बड़ी थी। रामकृष्ण डालमिया 15 वर्ष की आयु में घर छोड़कर श्री जगन्नाथ पुरी चले गये थे। इस विषय में रामकृष्ण के अनुज भ्राता बताते है कि ''मेरे ज्येष्ठ भ्राता श्री रामकृष्णजी ने अपना कोई स्वर्ण का जेवर डाक पार्सल से कलकत्ता पिताजी को भेज दिया था। उससे अनुमान हुआ कि वे जगन्नाथपुरी में है। तब पिताजी पुरी गये और वहाँ उनको खोज निकाला।" रामकृष्ण कलकत्ता आ गये और नर्वदा के साथ रहने लगे। जब नर्वदा 16 वर्ष की थी तब उसके फेफड़ों में सूजन हो गई। वह अपने पिता श्री बिहारी लाल जी के घर नवलगढ में हवा-पानी बदलने के उद्देश्य से गई तो वहाँ उनका अचानक स्वर्गवास हो गया। दूसरा विवाह दुर्गा से हुआ जिनका 15 वर्ष तक साथ रहा। इस पत्नी से एक पुत्री और तीन पुत्रों ने जन्म लिया। केवल पुत्री रमा जीवित रही जिनका विवाह शान्ति प्रसाद जैन से किया गया और जिन्होने एक आदर्श परिवार का जीवन जीया। उसके पश्चात् रामकृष्ण के परिवार की परिस्थिति और व्यवसाय बड़े उतार चढ़ाव में रहा। 25 रू॰ प्रति मास पर मै॰ हरसुखराय - लक्ष्मीनारायण के यहाँ नौकरी की। उसके बाद मै॰ भीकराज सागर मल और तत्पश्चात् 50 रू॰ मासिक वेतन पर मैं॰ रामरिख परशुरामपुरिया के यहाँ नौकरी की। इस नौकरी के दौरान ही रामकृष्ण ने कलकत्ता में रुई बाजार में सट्टा लगाना आरम्भ कर दिया जिसे वहाँ के स्थानीय लोग "फाटका" लगाना कहते थे। रामकृष्ण ने आत्म कथा में स्वीकार किया है कि एक बार जब वह चीनी की दलाली करता था और उनके पिताजी मैं॰ बृजराय हर-सुखराय के यहाँ रोकड़ संभालने की 60 रु. मासिक नौकरी करते थे। तब उनकी चाबी लेकर कैश के बक्से से 500 रू. चुराये थे जिनसे एक साइकिल और सोने का एक बटन सेट खरीदा था रामकृष्ण अपने मामा के यहाँ नौकरी करते थे जो चाँदी का व्यापार करते थे उनके यहाँ चाँदी के भावों के उतार-चढाव का अध्ययन करके एक सौदा कर लिया। उसमें डेढ लाख रूपये का लाभ मिला। उस आमदनी से रामकृष्ण ने 500 रू॰ चुराये हुए के स्थान पर 1000 रू॰ वापिस कर दिये और सारी बात बता दी। रामकृष्ण किसी भी व्यापारी और परिचित अथवा रिश्तेदार से उधार लेने से संकोच नही करते थे। एक महान् गुण उसकी साख बनाये रखता था कि जब लाभ होने पर रूपया पास होता तो वापिस देने में कोई देर नही

की जाती। उनको सेठ बलदेवदास नाथानी दूधवेवालाके ऐसे उदार और पक्के विश्वास वाले मिले कि उन्होने रामकृष्ण के हर नफे और नुकसान के सौदे को स्वीकार किया। सेठ बलदेवदास में क्षमा का अद्भूत गुण था। एक बार उनके नौकर बंसीलाल चौबे ने स्टाक एक्सचेन्ज की गली में उनके सिर पर तीन जूते मारें। उसको सेठ ने सहन किया। दूबे को न ही पुलिस के हवाले किया और न ही नौकरी से निकाला। अपने साथ व्यवहार और इस घटना के आधार पर रामकृष्ण ने सेठ को ''साधू व्यापारी'' कहा। सेठ ने उसे खुली छूट दी हुई थी कि वह शेयर का कोई भी सौदा उसके नाम कर सकता है। आय में उसको आधा मिलेगा और हानि होगी तो वह भुगतान करेगा। सेठ बलदेवदास दूधवेबालाके ने अपना वायदा निभाया और कई बार नुकासान में लाखों रूपयों का भुगतान किया। रामकृष्ण बम्बई में अपने मामा के यहाँ जाते रहते थे वहाँ उनका सम्पर्क भाई हनुमान प्रसाद पौद्दार से हुआ। ये बड़े धार्मिक प्रवृति के सज्जन व्यक्ति थे। रामकृष्ण को सट्टे के काम में हानि होती तो उनको बड़ा कष्ट होता था। वे रामकृष्ण को यह कार्य सदा के लिए त्याग देने का आग्रह करते थे। सट्टे को खेलने की भी एक लत होती है अन्य कार्य करते हुए भी रामकृष्ण 'फाटका' खेल बैठते थे। उससे एक बार उनको 10 लाख रूपये का ऋण देना बन गया था जो उनको सदा चिन्तित रखने लगा था। रामकृष्ण ने दुखी होकर उद्योग क्षेत्र में 1932 ई॰ में जब उनकी आयु लगभग 39 वर्ष थी प्रवेश किया। 1933 ई॰ में बिहार प्रान्त के बिहटा में चीनी मिल चालू किया। इस परियोजना को जल्दी चालू करने के लिए व्यापारिक दक्षता का उदाहरण देते हुए उस समय के 10 रू॰ बीघा जमीन के भाव के स्थान पर 100 रू॰ प्रति बीघा भुगतान की थी। उससे उनको जमीन तुरन्त मिल गई और वर्षो का समय बच गया। उसके पश्चात् रोहतास इण्डस्ट्रीज लि॰ नाम से एक कम्पनी गठित करके उत्तर बिहार में चीनी मिल लगाई। 1936 ई. में, भारत इनश्योरेनस कम्पनी लि.' के शेयर खरीद लिए। यह कम्पनी रोजगार में पिछड़ गई थी फिर भी रामकृष्ण ने शेयरों को दूसरों द्वारा बोले गये दो गुणे मूल्य में भुगतान करके उसका पूरा नियन्त्रण प्राप्त कर लिया। गाँवों में पहली बार मोबाइल फिल्म दिखाने का यूनिट तैयार करके रोजगार का नया क्षेत्र पकड़ा। इसी प्रकार 'प्राइवेट-ट्रंक टेलिफोन' डालमियां नगर से कलकत्ते तक आरम्भ की। 3 सीट वाला विमान खरीदने वाले रामकृष्ण पहले व्यक्ति थे। रामकृष्ण को बाजार की गति को परखने में कभी गलती नहीं हुई। उन दिनों सिमेन्ट बनाने ओर बेचने का एकाधिकार ए॰सी॰सी॰ के पास था। वह सिमेन्ट का भाव भी अपने तरीके से निर्धारित करती थी। इस प्रकार मोटा मुनाफा कमा रही थी। उसने यह भी अनुमान किया कि द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् इस पदार्थ की मांग बहुत बढ जायेगी। उन कारणों से सिमेन्ट उद्योग स्थापित करने का फैसला किया। छोटे भाई जयदयाल को उसकी पत्नी और पुत्र को जर्मनी और डेनमार्क में सिमेन्ट का प्लाट खरीदने के लिए भेजा। जयदयाल ने वहाँ 6 (छ:) प्लांट खरीदे और एक कागज के

कारखाने का प्लाट भी खरीदा। ये करखाने डालमिया नगर (बिहार) में 1938 में 500 टन क्षमता का, डालमियापुरम् (तमिलनाडु) में 1939 में 250 टन क्षमता का, डण्डोत (अब पाकिस्तान में) में 1939-40 में 250 टन क्षमता का, शान्ति नगर (कराची, अब पाकिस्तान में) 1939-40 में 500 टन क्षमता का और यही पर 1941-42 में दूसरा सिमेन्ट कारखाना 250 टन क्षमता का, स्थापित किये।

कुछ समय पश्चात् रामकृष्ण ने अनुभव किया कि बिना कोई बड़ा समाचार पत्र स्थापित किये देश की सेवा नहीं की जा सकती। सर आर्थर मूर 'स्टेटसमैन' के भूतपूर्व सम्पादक थे उनको 'टाइम्स आफ इण्डिया' के लिए इग्लैंड भेजा। वे तीन महीने वहाँ रहे अन्ततः उसका प्रबन्ध निर्देशक सर पियर्सन भारत आया। पहला सम्वाद रामकृष्ण डालमियाँ से इस प्रकार हुआ, ''आप मुझसे मेरा बच्चा (टाइम्स आफ इण्डिया और सम्बद्ध प्रकाशन) छीन लेना चाहते हैं। उसको मैने 40 वर्षो तक पाला है।'' मैंने कहा ''सर पियर्सन अब इस बच्चे को एक के बजाय दो धायें चाहिए। पियर्सन हंसने लगे। वे बोले, 'क्या आप इसे दो करोड़ रूपये में खरीदना चाहेंगे।'' मैंने उनके सामने एक खुला चेक रख दिया और कहा कि "आप स्वयं उसमें बिक्री की रकम भर लें।" इस प्रकार के खुले आफर से सौदा होने में देर नहीं लगी। दो कराड़ से कम में इस समाचार पत्र का अधिग्रहण कर लिया और 24 घण्टे के अन्दर ही सब लिखा पढ़ी की कार्यवाही भी पूरी कर ली गई। दिल्ली का संस्करण रामकृष्ण डालमिया ने आरम्भ कराया। हिन्दी दैनिक 'नवभारत टाइम्स' और साप्ताहिक 'धर्मयुग' आरम्भ करवाये। भारत बैंक 50 करोड की पूंजी से स्थापित किया। गोवन ब्रादर्स का कारोबार खरीद लिया। इण्डियन नेशनल एयरवेज जो कराची और बर्मा के बीच यात्री ढोता था ले लिया। ''धांगधारा कैमिकल्स'' ''एण्ड्यूल एण्ड कम्पनी'' के 3 जूट मिलों के शेयर प्राप्त किये। सूती और ऊनी कपड़े के उद्योग को भी आरम्भ करने के लिए ग्वालियर के महाराजा से मिल्स खरीदे परन्तु एक ज्योतिषी के कहने से उनको बेच दिया।

उद्योग और राजनीति का चोली दामन का साथ होता है एक उद्योगपति देश की स्थिति से अछूता नहीं रह सकता। उद्योग की उन्नति और विकास के लिए मौजूदा सरकारी विभाग और अधिकारियों से मधुर सम्बन्ध और सम्पर्क स्थपित करना अत्यन्त आवश्यक होता है। तीसवें और चालीसवें दसक में स्वाधीनता आन्दोलन जोरों पर था। काग्रेंस पार्टी ने महात्मा गांधी के नेतृत्व में विभिन्न कार्यक्रम चला रखे थे। रामकृष्ण 1920 में पार्टी के कार्यक्रमों का अनुसरण करने लगे थे। परिवार के सदस्यों के विदेशी मिलों से बने सभी वस्त्र जला दिये थे। उस समय वे बम्बई में थे। वहाँ से बहुत सी खादी की गाँठे कलकत्ता भेजी। बम्बई में फैन्सी टोपियाँ उतरवाकर आग में फैंकी। 1931 के पास बिहार के अधिकांश नेता 'सदाकत' आश्रम से गिरफ्तार कर जेल भेज दिये गये थे उनके अपने मित्र और काग्रेंसी नेता श्री हसन इमाम से सदेंश मिला कि वे एक जूलूस निकाले। रामकृष्ण डालमिया ने रमा अपनी पुत्री को साथ लिया और

काग्रेंसी झंडा लेकर दानपुर से पटना कचहरी तक जूलूस निकाला। आरम्भ में कुछ हजार व्यक्ति थे जो बाद में लगभग एक लाख की सख्या हो गई। कचहरी की दीवार पर चढ़ कर भाषण दिया। गिरफ्तार करने की चुनौती देने के बावजूद उनको गिरफ्तार नहीं किया गया। 1933 ई० में दिल्ली की व्यवस्थापिका परिषद के चुनाव में स्वतन्त्र उम्मीदवार के रूप में परचा भरा। काग्रेंस पार्टी के नेता रामकृष्ण की पोजीशन जानते थे वे भड़क उठे। जमनालाल बजाज ने बीच-बचाव करके मामला समाप्त करवा दिया। इस चुनाव में वे पराजित हुए। रामकृष्ण के पं० मदनमोहन मालवीय और सर गणेश से नजदीकी सम्बन्ध थे। सर गणेश 12 वर्षो तक मन्त्री रहे। उनको 3,500 रू० प्रतिमास देते थे। उसमें 3000 बनारस हिन्दू विश्वाविद्यालय को दान देते। 250 रू० अपने ऊपर खर्च करते थे और 250 रू० बचाकर भविष्य की अद्दष्ट आकस्मिक परिस्थितियों के लिए सुरक्षित रखते थे। काग्रेंसी नेता श्री नारीमन, सैयद महमूद को आर्थिक सहायता दी। काग्रेंसी पत्र सर्चलाइट को चालू रखने के लिए 500 रूपये प्रति माह देते थे। स्वामी सहजानन्द को 500/- रूपये प्रतिमाह और कई नेताओं को नियमित आर्थिक मदद देते थे। ब्रज किशोर बाबू बिहार के चोटी के नेता थे उनकी पुत्री प्रभावती का जयप्रकाश नारायण से विवाह हुआ था। उन्होने भद्र-अवज्ञा आन्दोलन को चलाने के लिए ढाई हजार रू० रामकृष्ण डालमिया से मांगा था जो तुरन्त दे दिया गया। पं. नेहरू को वे बहुत आदर करते थे पं. मोतीलाल नेहरू की मृत्यु के बाद उनको आर्थिक कठिनाई हुई। रामकृष्ण ने सहायता देने का प्रस्ताव किया और एक 5 हजार रूपये का चेक भी भेजा। पं० नेहरू ने सहायता अस्वीकार कर दी और वह रूपया किसानों की सहायता के लिए प्रयोग किया। 'नेशनल हैरेल्ड' समाचार पत्र आरम्भ करने के लिए मोहन लाल सक्सेना उनके पास शेयर देने गये। उन्होने 5 हजार के शेयर देने का प्रस्ताव किया। रामकृष्ण ने दो गुणा शेयर खरीदे। यह राष्ट्र नेता को सहायता देने का उत्साह दर्शाता है। कांग्रेस पार्टी को उन्होनें करोड़ो रूपयो का दान दिया। मीरा बहन को 500 रूपये प्रति माह हरिद्वार के पास बने आश्रम में भेजते थे। पुरूषोत्तमदास टंडन को पुस्कालय स्थापित करने के लिए पूरी सहायता दी। श्री बद्रीबाबू को सत्याग्रह के लिए गया नगर में स्वयंसेवक भेजने के लिए ढाई हजार रूपये दिये। महात्मा गांधी को नोआखली में पीड़ित लोगों की सहायता के लिए 1 लाख रूपयों की आवश्यकता पड़ी। जिसे तुरन्त भेजा गया। **1942 में द्वितीय महायुद्ध के दौरान डालमिया नगर का कारखाना 21 दिन बन्द रखा ताकि अग्रेंजो को डुप्लेक्स कागज और सिमेंट उपलब्ध न हो सके।** सुभाष चन्द्र बोस को 500 रू० मासिक कई वर्ष तक दिये। रामकृष्ण के उनके साथ घनिष्ट सम्बन्ध थे। जनरल सर क्लाड़ आचिनलेक और मोहम्मद अली जिन्ना से मित्रता थी। जिन्ना को भारत का विभाजन न करवाने के लिए समझाया। वे अपना औरंगजेब रोड वाला बंगला रामकृष्ण को बेचकर पाकिस्तान चले गये। डॉ. बी. आर. अम्बेडकर उनके 3 सिकन्दर रोड वाले बगले पर कई बार आये। रामकृष्ण डालमिया

का इस प्रकार देश की स्वतन्त्रता में सहयोग रहा। उनका अनेक राजे-महाराजाओं से मित्रों जैसा सम्बन्ध था। उनमें डूंगरपुर की राजमाता देवेन्द्र कुवर जी, उनकी पुत्री रमाबाई, बीकानेर के महाराजा सर गंगासिंह, जयपुर के स्व. महाराजा मानसिंह, धौलपुर के महाराजा आदि प्रमुख थे। आरम्भ में रामकृष्ण डालमिया ने चौथे दशक में विश्व सरकार स्थापना का विचार प्रसारित किया। उसके लिए 1943 ई में भारत व विदेश के कुछ महत्वपूर्ण व्यक्तियों को परिपत्र भेजकर अनुरोध किया कि वे विश्व सरकार की स्थापना करें। उनका स्वप्न था कि ''सभी प्रादेशिक प्रणालियाँ समाप्त कर दी जाये, सम्पत्ति का समान वितरण हो, भिन्न-भिन्न मूल के लोग अभावों से मुक्त होकर स्थायी शान्ति से सादा जीवन व्यतीत करें, प्रेम एवं सद्भाव के द्वारा उन सबकों जो अपने अज्ञान के कारण शत्रु दिखाई देते है मित्र बना ले। संसार के भिन्न-भिन्न राष्ट्र मिलकर एक राष्ट्र बन जायें, जिनकी भक्ति एक झण्डे के प्रति हो, जो एक ईश्वर में विश्वास करे और अन्ततः जिनकी भाषा भी एक हो।'' इसी का अग्रेंजी सन्देश दिल्ली की दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी में एक संगमरमर के पत्थर पर खुदवाकर दीवार पर लगवाया गया। इस लाइब्रेरी की बिल्डिंग रामकृष्ण डालमिया ने बनवाकर भेट की थी। जिसका उद्घाटन देश के तत्कालीन प्रधानमन्त्री पं॰ जवाहरलाल नेहरू ने किया था। वह डालमिया गैस्ट हाउस का एक तिहाई भाग है आज भी मुख्य द्वार पर संगमरमर के पत्थर पर निम्नलिखित लिखा हुआ पढ़ा जा सकता है।

This stone was laid by
His excellency General Sir claude Auchin leck
C. C.I. E., CBE, CSI, DSO, OBE, A. D. C.
Commander-in-chief in India
on 5th February, 1944
The Building is the gift of
Seth Ram Krishna Dalmia.

रामकृष्ण डालमिया धार्मिक प्रवृति के व्यक्ति थे। श्रीमद् भागवत्गीता पुराण का प्रतिदिन अध्ययन करते थे। ''ज्ञानेश्वरी गीता'' और ''पचंदशी'' में तत्वज्ञान की व्याख्या बडी कुशलता से करते थे। गूढ तत्वज्ञानी चूडाला का चरित्र उनको बहुत प्रिय था। उन्होने परमहंस जी, स्वामी विवेकानन्द एंव रामतीर्थ के लिखे सभी धार्मिक ग्रन्थों का बार-बार अध्ययन किया। छोटी आयु में ही उनको सन्यासी की प्रवृति थी जब उनको श्रीजगन्नाथ पुरी से उनके पिता लाये थे ''रेवाड़ी आश्रम'' में अपने परिवार के साथ कई महीने आश्रमवासियों की तरह खुशी से जीवन बिताया। वहाँ ये स्वयं ही अपने हाथ से बर्तन मांजते, कपड़े धोते, सादे से सादा एवं अल्प भोजन करते और आश्रम के गुरू जी श्री परमानन्द जी महाराज का अधिक से अधिक सत्संग करते तथा प्रवचनों पर मनन करते थे। इसी प्रकार आगरा वाले श्री आलूवाले बाबा के आश्रम में

भी कई मास रहे। बाबा बड़े गहरे ज्ञानी थे और केवल आलू खाकर जीवित रहते थे। उनके आश्रम में केवल आलू खाया और उनके गूढतम वेदान्त तत्वों को समझा और मनन किया। रामकृष्ण जगदम्बा के भक्त थे। उसमें अटूट विश्वास था जो भी अच्छा या बुरा होता उसे जगदम्बा की कृपा ही मानते थे। उनकी पत्नी श्रीमति सरस्वती ने एक संस्मरण में बताया कि, "सेठ जी उस समय श्री जगदम्बा जी का पाठ पूरी तन्मयता से कर रहे थे इसी बीच बच्चे के रोने से मन उद्विग्न हो उठा। पाठ से उठकर बच्चे के पास जाना पड़ा। मंदिर में लाकर बच्चे को शान्त करने का प्रयत्न किया, पर शान्त न हो सकी और रोती रही। उससे नाराज होकर सेठ जी ने उसके बाल पकड़कर खींचा और इधर-उधर झटका दिया। बच्ची डर के मारे चुप हो गई और तब डरके मारे बाल समेटवा लिये। बच्चा तो चला गया पर सेठ जी व्याकुल हो गये। कुछ देर सोच में बैठे रहे। फिर जगदम्बा माँ की मूर्ति के पास माथा टेके रहं और त्वरित गति से जाकर बड़े प्यार से यशोधरा को छाती से चिपटाये हुए लौटे और उसको माँ की मूर्ति के आगे बैठाकर उसके चरण छूकर और गद्गद् स्वर में बोलने लगे– बिटिया तू माँ का ही रूप है। तू देवी है। मैंने तुझे सताया है। तू मुझे माफकर दें और तब बाप-बेटी, दोनों माँ के चरणों में पडें नजर आयें।" यह संस्मरण यह सिद्ध करता है कि रामकृष्ण में धर्म में कितनी श्रद्धा थी। उनको छोटी बच्ची में माँ जगदम्बा का रूप नजर आया। अपनी गलती का अहसास और किया क्षमा याचना की। इस श्रद्धा और आस्था के बारे में एक संस्मरण सागर मल दुर्गादत (ऋषि) शर्मा ने बताया कि रामकृष्ण लाखों करोड़ों के स्वामी थे उन्होने जब दान दिया तो यह नही सोचा कि रकम छोटी है या बड़ी है। शर्मा जी बताते है कि रामकृष्ण ने अपने गाँव चिडावा से जिससे भी रूपया उधार लिया वापिस नहीं किया। वे कहते थे कि'' वैसे मैं लाखों रूपये दे दूंगा, लेकिन चिडावा के उधार का एक पैसा भी वापिस नहीं करूगाँ, क्योकि वही मेरी असली पूँजी है। एक बार इसी गाँव के रामकुमार जी जामडायत उनसे अपना बाकी मांगने गये, तो उनको भी उन्होने यही जवाब दिया।"

रामकृष्ण के सौजन्य से सरस्वती विहार की स्थापना हुई। डा॰ रघुवीर के सुपुत्र डा॰ लोकेशचन्द्र ने कहा है कि , "25वर्षो के निरन्तर योगदान से श्रद्धेय रामकृष्ण और श्री जयदयाल जी ने आचार्य रघुवीर के शब्द यज्ञ को अर्थ समिधाओ से सम्पन्न किया"। शिक्षा पर पैसा खर्च करना पैसे का सदुपयोग मानते थे। वर्षो पूर्व स्त्रियों की शिक्षा पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। रामकृष्ण ने चिडावा में बालिका विद्यालय स्थापित किया। वह विद्यालय उन्नति करता गया और अब डालमिया बालिका उच्च माध्यमिक विद्यालय शेखावटी का सर्वश्रेष्ठ शिक्षण संस्था माना जाता है। दूसरा युवाओं के लिए डालमिया उच्च माध्यमिक विद्यालय भी चल रहा है।

दोनों डालमिया बन्धु धार्मिक प्रवृति के व्यक्ति थे। गोहत्या बन्दी के लिए सक्रिय

काम किया। 1966 के प्रथम जूलूस में शामिल हुए। उन्होने अनेकों मन्दिर और धार्मिक प्रतिष्ठानों को नियमित आर्थिक योगदान दिया। दीन परिवार की लडकियों की शादी में दिल खोलकर सहायता की।

रामकृष्ण डालमियाँ ने अपनी जीवनी में व्यक्तिगत परिस्थितियों को खोलकर रखा। उन्होनें कई विवाह रचायें। उसके बारे में लिखा, "मेरी सभी पत्नियों के बच्चे बुद्धिमान हैं। पहली धर्म पत्नी है सरस्वती। उनके 7 बच्चे - 5 पुत्रियाँ एवं 2 पुत्र। सबसे बड़ा पुत्र गुणनिधि एक आदर्श व्यक्ति है। उससे छोटा है विद्यानिधि। ज्यों-ज्यों समय बीतेगा, त्यों-त्यों वह भी अपने बड़े भाई के चरण चिन्हों पर चलता जायेगा। दूसरी धर्म पत्नी है आशादेवी। मैंनं सरस्वती के बाद आशा से विवाह किया। उसके 3 बच्चे-पुत्र ध्रुव और 2 पुत्रियाँ। गंगा (अलका) बहुत बुद्धिमान् है। समय ज्यों-ज्यों बीतेगा, वह एक आदर्श लड़की होती जायेगी। तीसरी धर्म पत्नी है देवी दिनेशनन्दिनी। मेरा अन्तिम विवाह दिनेश से हुआ। उसके 7 बच्चे हैं 3 पुत्र एवं 4 पुत्रियाँ। सबसे बड़ी पुत्री पद्मा है। वह सरल हृदय की लड़की है। उसका विवाह हो गया हैं जिसकी चर्चा मैंने अन्यत्र की है। ईश्वर के दरबार में सरल हृदयता का बड़ा मूल्य है। दिनेश का बड़ा पुत्र शिवनिधि भी सरल हृदय है। एक सीमा तक उसकी सबसे छोटी पुत्री अर्चना भी सरल हृदय है'' यह स्वीकाारोक्ति सराहनीय है। परन्तु इतना ही बता देना और बहुविवाह में लिप्त हुआ पाये जाना पाठको को सन्तुष्टि नहीं देता। रामकृष्ण ने एक स्थान पर आत्मकथा में दिया है कि मैं बहुविवाह के विरूद्ध था। जब मेरे एक विवाहित सम्बन्धी मौसी के लड़के नागरमल सेकसरिया जो ज्वाला प्रसाद भरतिया के जामाता थे, पुन: विवाह करने लगे थे तब उन्हे रोकने के लिए मैं दौड़कर लाहौर चला गया था। बाद मैं मैने स्वयं एक से अधिक विवाह करना आरम्भ कर दिया।" उसके अतिरिक्त रामकृष्ण ने एक घटना का विवरण और किया है," यह घटना 1939-40 की होगी। एक लड़की के बारे में मेरी धारणा बनी कि नर्वदा ने ही पुनर्जन्म लिया है। मेरे परिवार के सदस्यों ने उसे राजी करने की चेष्टा की कि वह मुझसे विवाह कर ले, लेकिन उसने अस्वीकार कर दिया। मैं अधपगला जैसा हो रहा था। नर्वदा याद आती और ज्यों ही उसका स्मरण हो आता, त्यों ही मेरी आखें इतनी बरसती कि एक लोटा आसुओं से भरा जा सकता था। उस समय मेरे व्यक्तिगत सहायक मृगांक बाबू थे। वे बोले- यह लड़की आपके लिए गम्भीर समस्या बन गई है। यह तभी हल हो सकती है, जब आप कोई कठिन काम अपने हाथों में ले और उसी पर अपना ध्यान केन्द्रित करें। मुझ पर इस परामर्श का कोई असर नहीं हुआ। कई बार उन्होंने और मेरे मित्रों ने कहा कि मैं अन्य किसी लड़की से विवाह कर लूं या किसी को उपपत्नी रख लूं। मैंने उन्हें फटकार दिया।" सेठ रामकृष्ण को दूसरी पत्नी ने अनुमानत: स्वयं पूत्रहीन होने के कारण तीसरी शादी करने को उत्साहित किया होगा। इस बारे में आत्म कथा में लिखा है कि, "मेरा विवाह प्रीतम के साथ दुर्गा ने ही सम्पन्न कराया ------ यह जानकर

कि प्रीतम ऐसे सन्त की पुत्री है मैंने उससे विवाह किया था, लेकिन वह बहुत आधुनिक स्त्री थी। उसने हम लोगों के साथ रहना नहीं चाहा, तो आपसी समझौते से उसने अपने पिता का नाम ग्रहण कर लिया और कुमारी तख्तासिंह कही जाने लगी।"

हुनमान प्रसाद पोद्दार, रामकृष्ण डालमिया, जयदलयाल डालमिया, उन तीनों में परस्पर परम अनुकरणीय प्रेम था। हुनमान प्रसाद पोद्दार कलकत्ता में क्रान्तिकारियों की सहायता करने के अपराध में पश्चिमी बंगाल में शिमलापाल की जेल में रखा गया। रामकृष्ण को छटे दशक में दो वर्ष के कारावास की सजा दी गई। उन्होंने इस सजा का दोष ज्योतिषि द्वारा बताये गलत भविष्य फ़ल को दिया। रामकृष्ण ने ज्योतिषी हवेलीराम के सुझाव पर अपने उद्योगों पर कम ध्यान देकर सट्टे में पूरा प्रयास किया। जिससे उनको ढाई करोड़ रूपयो का घाटा हुआ। उस घाटे को पूरा करने के लिए जनता के लगाये रूपयों का भारत इन्श्योरेस कम्पनी से भुगतान करवा दिया। यह सरकार द्वारा बनाये नियमों के विरूद्ध था। इस अपराध पर मुकदमा चला और दो वर्ष की जेल की सजा दी गई, उन्होंने उस सजा को पूरे साहस और शान्ति से काटा और मई 1964 को रिहा किया गया। आगे के काल में डालमिया के उद्योगों में ह्रास होता गया। परिस्थिति को संभालते बहुत समय लगा। टाइम्स आफ इण्डिया' समाचार पत्र को 2 करोड रू॰ में अपने जमाता शान्ति प्रसाद जैन को बेच दिया। अन्य कई उद्योग भी हाथ से निकल गये। विकास रूका रहा। उनकी मृत्यु 26-09-1978 को दिल्ली में हुई। यह सजीव और संजीव जीवन इस प्रकार चला गया। हजारों माने-जाने लोगों ने श्रद्धांजिलियाँ दी।

यह घराना सम्पन्न तो है ही। उसने उनके जन्म शताब्दी के अवसर पर ''कर्मयोगी श्री रामकृष्ण जी डालमिया स्मृति ग्रन्थ ''प्रकाशित करवाया। इसे श्री हरिशंकर द्विवेदी और अनुज भ्राता जयदयाल डालमिया ने सयुक्त प्रयास से लिखा। उसकी विशेषता यह है कि उसका भार लगभग 2½ किलो ग्राम है और उसमें लगभग 980 पृष्ट है। इसे प्रथम भाग कहा गया है अन्य भाग अभी देखने में नहीं आये हैं।

▲▲▲

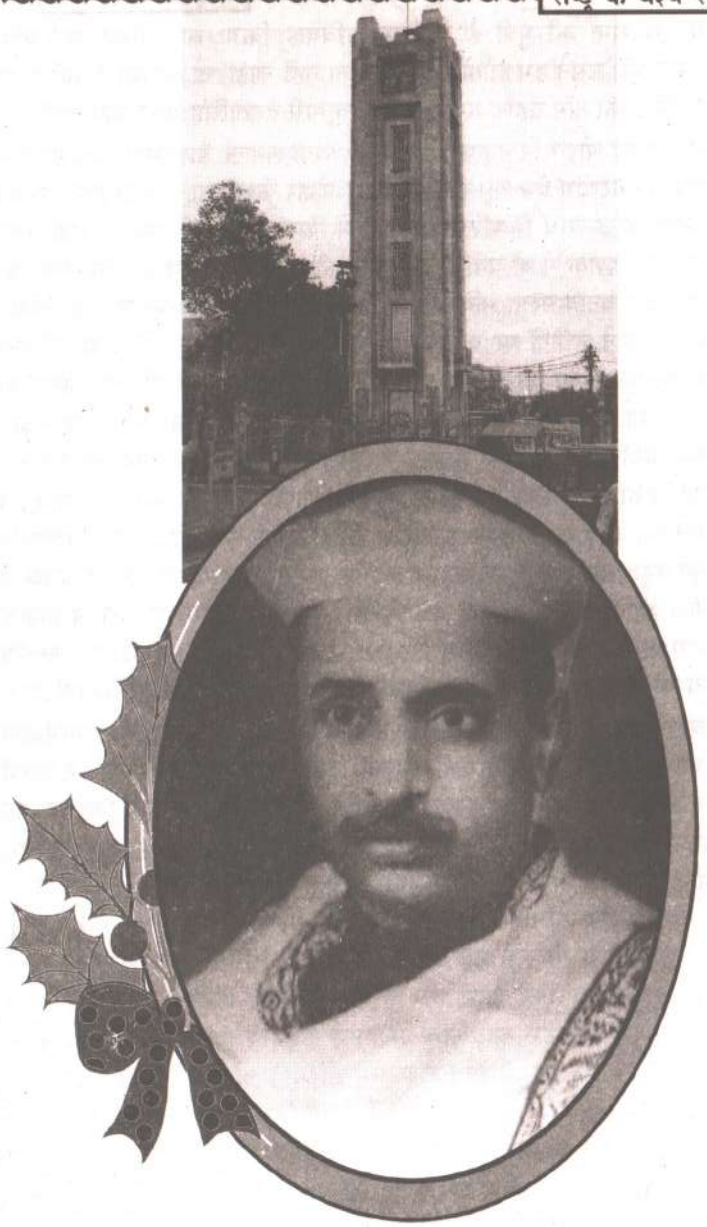

रायबहादुर लाला रामरूप

रायबहादुर लाला रामरूप जी

ला. रामरूप जी का जन्म 1889 ई. में ला. सांवलदास के घर हुआ। जन्म स्थान के बारे में कहे कि ''सब्जी मण्डी'' गाँव में हुआ था तो सभी आश्चर्य और विश्वास नहीं करेंगे। यह उस समय की बात है जब दिल्ली और उसमें रहने वाले लोग एक मजबूत चार-दिवारी के अन्दर रहते थे उस चार-दिवारी से बाहर आने के कश्मीरी गेट, मोरी गेट, लाहौरी गेट, अजमेरी गेट, दिल्ली गेट आदि बड़े-बड़े गेट थे जो भारी-भरकम लकड़ी के दरवाजों से फिट थे। उन दिनों सब्जी आदि के बेचने और खरीदने के लिए मण्डी शहर के बाहरी क्षेत्र में होती थी इसलिए यह मानना ही होगा कि ला. रामरूप जी का जन्म सब्जी मण्डी गांव की गली महाजनान'' में हुआ था। इन दिनों उन्हीं के नाम पर ''गली रामरूप'' के नाम से वह स्थान जाना जाता है। इस गांव का शहरीकरण 1947 की स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हुआ। देश के विभाजन पर अनगिणित शरणार्थियों का इस नगर में आगमन हुआ था उनको बसाने का विस्तृत कार्य / निर्माण किया गया था। यह सब्जी मण्डी गांव के चारों तरफ से फलदार-बागों से घिरा हुआ था बाग कड़े-खां, बागपदम, अम्बा बाग व सब्जी मण्डी गाँव आदि जी.टी.रोड पर बीहड़ जंगल थे। उन दिनों राजनीतिक राजतन्त्र की नीति के कारण गांव के लोग नगर में आकर बसने से डरते थे। उनको शारीरिक रूप से शोषित होने का भय होता था। सरकारी नौकरी मिलने के अवसर उन्हीं घरानों को उपलब्ध होते थे जिनके राजाओं, मन्त्रियों और दिवान आदि से सम्पर्क होते। दिल्ली नगर 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम के बाद ब्रिटिश साम्राज्य के आधीन आ गया था। बंगाली क्रान्तिकारियों से घबराकर उन्होंने 1911 ई. में कोलकाता से दिल्ली में राजधानी ले आये थे। उन दिनों में उनका सचिवालय आज के पुराने सचिवालय में था। ब्रिटिश गौरे अधिकारी और कर्मचारी उसी के पास बने घरों में रहते थे। उस स्थान को उन्होंने अपने ढंग से रखा हुआ था। गर्मियों में पानी का छिड़काव होता था इसलिए माल रोड को जोड़ने वाली सड़क को 'ठंडी सड़क' कहा जाता था। ला. रामरूप का व्यापार सब्जी मंडी के पास धर्मशाला के पास में स्थित हवेली से चलता था। उसी हवेली में ला. सांवलदास के बैठने की गद्दी थी। नजदीक और दूर से आने वाले व्यापारियों से वहीं पर लेन-देन किया जाता था धन-दौलत, रूपयों, पैसों की कोई गिनती नहीं थी। रामरूप जी को बड़े ही लाड़-प्यार

से पाला गया। रामरूप जी ने चार क्लास तक उर्दू-भाषा के साथ शिक्षा प्राप्त की थी जो साधारणतया एक व्यवसाय में लगे परिवार के लिए बहुत थी क्योंकि उनको लिखना, पढ़ना और घटा और जोड़ने आदि काम करने होते थे।

उन दिनों की रस्म और रिवाज के अनुसार, ला. रामरूप जी का विवाह लीलावती के साथ 9-10 वर्ष की आयु में हो गया था। उनका बचपन आजादी के साथ बीता था। मित्रों के साथ बागों और आस-पास के गांवों में चहल कदमी, फलदार वृक्षों से कच्चे और अधपके फलों को तोड़ना, पानी में तैरना, साथियों के साथ खेलने में समय व्यतीत हुआ। परन्तु विवाह के बाद, उनको अपने पिताजी के शासन में व्यापार के अनुभव और कौशल को सीखना पड़ा। अब उसके पिताजी ला. सांवलदास की निगाहें उनके प्रत्येक कार्य और आचरण पर रहती थी। उसका परिणाम यह हुआ कि वे अपने पिताजी का व्यापार स्वतन्त्र रूप से सम्भालने के योग्य हो गये। ला. रामरूप ने अपने समय में पूरी तन्मयता और सावधानी से धन कमाया और उपयोग भी किया। उनके रहने का ढंग नगर सेठ का था। चूड़ीदार पजामा, शेरवानी पहनते थे सिर पर पगड़ी होती थी। घर के और बाहर के व्यवसाय और नीजि कार्यों को करने के लिए नौकर रखे हुए थे। घोड़ी-गाड़ी रखी हुई थी जिसको 3(तीन) घोड़े खींचते थे। सवेरे और सायंकाल, स्वयं अकेले या परिवार के साथ इसी से सैर और आनन्द के लिए जाते थे। इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि यह परिवार आर्थिक दृष्टि से कितना समृद्ध था।

समृद्धि और सम्पन्नता को साधारणतया अनेक दुर्गुणों और व्यसनों की जड़ माना गया है। परन्तु पूर्वजों के संस्कार, उनके पुनीत आचरण उस रास्ते पर चलने से रोकते हैं इसी कारण ला. रामरूप एक दूरदर्शी, उच्च आदर्श, चरित्रवान और प्रबल सिद्धान्तवादी व्यक्ति उभर कर सामने आये। संतान के नहीं आने से परिवार में एक कमी के होने का अहसास बना रहता था। ला. रामरूप और उसकी पत्नी लीलावती को चिन्ता रहती कि अपार सम्पत्ति और व्यापार आदि की विरासत को उनके बाद कौन संभालेगा। पत्नी का सदैव परामर्श होता कि उनको अपना वारिस बनाना ही होगा। ला. रामरूप उच्च चरित्र के आदर्श पुरूष थे। उन दिनों में परिचलित परिपाटी के अनुसार उनको दूसरा विवाह करने से कोई नहीं रोक सकता था। विपुल धन और सम्पत्ति वाले युवक के पास इस प्रकार के प्रस्ताव आते रहते हैं। परन्तु ला. रामरूप अपनी पत्नी लीलावती को असीम प्यार और आदर करते थे। इस परिस्थिति में उन्होंने सन् 1925 में जब उनकी आयु लगभग 36 वर्ष ही थी एक 16 वर्ष के युवक जगन्नाथ को गोद लिया और उसको व्यापार में प्रशिक्षण देना आरम्भ किया। यद्यपि वे स्वयं

केवल 4(चार) कक्षा तक ही पढ़ पाये थे, उन्होंने दत्तक पुत्र जगन्नाथ को हाई स्कूल तक शिक्षा दिलाई।

जिस प्रकार फल आने पर वृक्ष झुकता है, ला. रामरूप जी विपुल धन सम्पत्ति प्राप्त करने के पश्चात् परम स्नेही, परोपकारी, और मानवतावादी बनकर लोगों के सामने आये। उनके पौत्र श्री राजकुमार जी का कहना है कि, "ला. रामरूप जी ने रूपया-पैसा बहुत कमाया और सारे जीवन ही कमाते रहे। परन्तु उन्होंने अपने ही दिल में परिवार और पुत्र के लिए कितना धन और रूपया आवश्यक होगा, उसकी एक सीमा निश्चित कर ली थी। उस सीमा से अधिक जितना भी रूपया-पैसा उनके पास होता, उसको वे धार्मिक और जन कल्याण के कार्यों में खर्च करते थे।" वे बताते हैं कि इस प्रवृति के कारण वे दान और सहायता दोनों हाथों से देते थे और निसंकोच खूब देते थे।" यद्यपि ला. रामरूप जी ने सीधे रूप में देश की स्वतन्त्रता के लिए हो रहे आंदोलनों और संघर्षों में भाग नहीं लिया, परन्तु गुप्त रूप से उन्होंने किस व्यक्ति और संगठन को कितना दिया, आज तक किसी को पता नहीं है। ला. रामरूप जी की यही भावना दिल्ली नगर में घंटाघर के निर्माण करवाने के पीछे थी। वे सार्वजनिक रूप से इसकी घोषणा नहीं कर पाये। क्योंकि जेल में जाना और सजा को भुगतना देशभक्ति के कार्यों को पूरा होने में वे बाधा मानते थे। दिल्ली के व्यस्त और भीड़भाड़ भरे क्षेत्र में खड़े इस भव्य और ख्याति प्राप्त घण्टाघर पर लगे संगमरमर के पत्थर पर जो खुदा हुआ लिखा है अंग्रेजी भाषा में है और हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है–

अंग्रेजी भाषा में खुदा हुआ	हिन्दी भाषा में अनुवाद
Ram Roop Tower 1941	रामरूप टावर 1941
Constructed by the Generous	उदार दान द्वारा निर्मित
Donation of Lala Ram Roop,	लाला रामरूप,
Vaish Aggarwal	वैश्य अग्रवाल
Proprietor of	के मालिक
Messrs Nannhemal Mal	मै.: नन्हेंमल सांवलदास
Sawal Dass	लैण्डलोर्डस एवं बैंकर्स, सब्जी मण्डी,
Landlords and Bankers, Subzi	दिल्ली
Mandi, Delhi Under the	उनकी निगरानी में
Suprvision of	मि. एस.एल. गुप्ता आई.एससी.
Mr. S.L. Gupta, I.Sc.	निगम अभियन्ता
Municipal Engineer	ठेकेदार : मै. डी.एम. सेठी एण्ड कं.
Contractors : M/s. D.S. Sethi	पहाडगंज, दिल्ली
& Co. Paharganj, Delhi.	मिर्जा मुमताज हुसैन काजिल
Mirza Mumtaz Husen Kazil	बसु के. सी. एस. सचिव,
Basu K.C.S. Secretary,	निगम समिति, दिल्ली।
Municipal Committee, Delhi	

जब कोई व्यक्ति दृढ़ निश्चय कर लेता है तो वह परोक्ष और साक्षात् सभी साधनों से जनकल्याण और विकास के कार्य निश्चित रूप से करता है। ला. रामरूप जी निरक्षरता और गरीबी को सभी बुराईयों की जड़ मानते थे। वे दिल्ली नगर के उच्च वर्ग से खुलकर मिलते और इस विषय पर विचार-विमर्श भी करते थे। ला. श्रीराम जी उसके अभिन्न मित्र थे। ये दोनों साधारणतया एक दूसरे के घर आते-जाते थे इससे आपस में पारिवारिक सम्बन्ध बहुत ही प्रगाढ़ थे। आपस के सुख-दुख, आयोजन, धार्मिक कार्यक्रमों में भाग लेते थे। ला. रामरूप जी के पौत्र श्री राजकुमारजी अपनी स्मृति के झरोखे से बताते हैं कि "ला. श्रीराम जी को छोटे बच्चे बहुत अच्छे लगते थे। मैं जब उनको घर आने पर दिखाई नहीं देता तो मेरे माँ और पिताजी को मुझे भेजने को कहते। मुझसे बिना मिले कभी भी वापिस नहीं जाते थे।" जिस प्रकार की समाज सेवा की प्रवृत्ति ला. रामरूप जी की थी उसी प्रकार ला. श्रीराम जी भी सोचते थे। यद्यपि ला. रामरूप जी और ला. श्रीराम जी का पारिवारिक व्यय अपने-अपने व्यापार और व्यवसाय से आनन्दपूर्वक हो रहा था, उन दोनों को उस काम, उन उद्योग धन्धों को स्थापित करने की ललक थी जिससे लोगों को लाभकारी काम मिल सके और परिवार की उन्नति हो। वह स्वप्न पूरा हुआ दिल्ली-क्लोथ मिल के स्थापित और चालू हो जाने के बाद। ला. रामरूप जी जब धन का समावेश कर रहे हैं तो उनको इस कम्पनी के "बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स" का सदस्य होना भी तो आवश्यक था। ला. रामरूप मैं. दिल्ली क्लोथ मिल्स के बोर्ड के 35 वर्ष के लम्बे समय तक सदस्य रहे। यह किसी से भी छुपा नहीं है कि उन दिनों दिल्ली क्लाथ मिल्स ने कितने श्रमिकों को काम दिया हुआ था उस पर कितने परिवारों की रोजी-रोटी निर्भर थी। इन दोनों की जन कल्याण की प्रवृत्ति ही सामने थी जिसके आधार पर दिल्ली क्लाथ मिल्स ने श्रमिकों को मिल्स के समीप ही पक्के और हवादार मकान बनवाकर, परिवार सहित रहने के लिए दिये।

जब ला. रामरूप जी ने जगन्नाथ जी को गोद लिया उनकी आयु लगभग 16 वर्ष थी। उन्होंने सक्रियता से उसको अपने व्यापार का प्रशिक्षण दिया। जगन्नाथ जी भी सुयोग्य और उत्तरदायित्व प्रवृत्ति का युवक था कुछ कार्य उसने स्वयं ही सम्भाल लिये और कुछ ला. रामरूप जी ने। उसमें सभी प्रकार के गुण और कुशलता को देखकर व्यापार उसे देकर अपना समय जन और समाज सेवा में व्यतीत करने लगे। व्यापार से आमदनी में वृद्धि हो रही थी। ला. रामरूप जी निसंकोच और बेहिचक नये निर्माणों की योजनाओं को मूर्तरूप देने लगे थे। घंटाघर 1941 में बनकर तैयार हो गया था। जिसकी ऊँचाई लगभग 40 फुट है। गली कृष्णा, सब्जी मण्डी के पास सोहनगंज में राधाकृष्ण मंदिर बनवाया। सब्जीमण्डी बाजार की धर्मशाला जो उनकी गद्दी के पास

ही थी 1942 में बनकर तैयार हो गई थी। ला. रामरूप जी अपने ग्राहकों का बड़ा आदर करते थे। एक ग्राहक के आग्रह पर पालम गाँव स्टेशन के सामने धर्मशाला, दूसरे के कहने पर कंझावला गाँव में रामरूप हैल्थ सैन्टर खोला। ला. रामरूप जी ने यात्राएँ बहुत की। जहाँ यात्रियों की कोई आवश्यकता होती उस काम को अवश्य कराते। ज्वाला जी, राजस्थान में महावीरजी, हरिद्वार में परमार्थ आश्रम में कमरे बनवाये। वे द्वारिकाधीश की यात्रा भी करने गये। उन दिनों इतनी लम्बी यात्रा करना बहुत कठिन होता था और यात्रा करने के साधन नगण्य होते थे। ला. रामरूप जी के समान ही ला. जगन्नाथ धन और सम्पत्ति का सदुपयोग करने लगे थे। वे जानते थे कि–

पानी बाढ़ौ नाव में, घर में बाढ़ौ दाम।
दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानो काम॥

ला. रामरूप जी का देहावसान 7 अगस्त 1945 को हो गया था। उसके सुपुत्र जगन्नाथ जी ने अपने पिता रामरूप जी की स्मृति को चिरस्थाई बनाने के लिए एक के बाद एक धार्मिक और जनकल्याण के कार्य किये। शक्ति नगर के पास रामरूप विद्या मंदिर विद्यालय की स्थापना की। इस विद्यालय से हजारों युवकों ने शिक्षा ग्रहण करके अपने जीवन को संवारा है। ला. जगन्नाथ जी अपनी माताजी लीलावती जी को बहुत ही सम्मान और प्यार करते थे उनकी स्मृति में लीलावती पब्लिक स्कूल स्थापित किया। इन विद्यालयों का प्रबन्धन कुशलता और निर्बाध चलता रहे, इसलिए रायबहादुर रामरूप ट्रस्ट का गठन किया। अपने पिता ला. रामरूप जी के मित्र डॉ. युद्धवीर सिंह को भी नहीं भूले। उनकी स्मृति में "डॉ. युद्धवीर सिंह होम्योपैथिक चैरिटेबल ट्रस्ट" स्थापित किया। रायबहादुर रामरूप जी के नाम से आर्यपुरा दिल्ली में होम्योपैथिक फ्री डिस्पैंसरी भी चल रही है। पिताजी से प्राप्त विरासत को आगे बढ़ाना और उन्नति करना भी पुत्र का पहला कर्तव्य होता है। जिस दिल्ली क्लोथ मिल्स के ला. रामरूप 35 वर्षों तक डायरेक्टर रहे, ला. जगन्नाथ जी ने सफलता पूर्वक उस कार्य को 40 वर्षों तक किया। अनेक संस्था को चलाने के लिए सहयोग दिया जिसके वे लम्बे समय तक ट्रस्टी रहे। रामजस फाउण्डेसन जो दिल्ली में अनेक विद्यालयों और रामजस कालेज का संचालन करता है उसके अध्यक्ष रहे। इस प्रकार ला. जगन्नाथ ने अपने कार्यों से अपने पिता ला. रामरूप जी का नाम रोशन किया जिनको अपने जीवन में अनेक सफलताएँ प्राप्त हुई थी तब की सरकार ने उनको राय बहादुर की उपाधि से विभूषित किया था जिसके वे वास्तव में अधिकारी भी थे। ऐसी विभूतियाँ अनेक वर्षों में जन्म लेती हैं जिस पर समाज को गर्व होना स्वाभाविक है।

▲▲▲

प्रेरक पुरूषार्थी–बद्री प्रसाद अग्रवाल

प्रेरक पुरूषार्थी –ला॰ बद्री प्रसाद अग्रवाल

पुरूषार्थी कौन नहीं बनना चाहता? यह हर व्यक्ति में एक प्राकृतिक अभिलाषा होती है। उसके लिए भरसक प्रयत्न भी किये जाते हैं। उसमें सफलता विधि के हाथ में होती है। ला॰ बद्रीप्रसाद अग्रवाल का जीवन ऐसे ही व्यक्ति का जीवन है जिसको आदर्श बनाकर अपने उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकता है। उनका जन्म 9 अगस्त 1927 को मध्य प्रदेश प्रान्त के जबलपुर नगर में हुआ। उनके पिता जी का नाम श्री जीवनलाल अग्रवाल और माता जी का नाम सुखरानी देवी था। परिवार अपने क्षेत्र में विख्यात था, क्योंकि ला॰ जीवन लाल जी बहुत सी बसों के मालिक थे। समय करवट लेता ही है। वह ब्रिटिश साम्राज्य का समय था उनकी बसों को सरकार ने अपने अधीन कर लिया। तब परिवार के गुजारे के लिए माल की ढुलाई के लिए ट्रक आदि प्राप्त किये। उन्ही दिनों अन्य भाइयों में बटंवारा हुआ तो वह स्थापित व्यवसाय छोड़ना पड़ा। उन दिनों बद्रीप्रसाद जी बालक ही थे। तब ब्रिटिश शासन ने शिक्षा व्यवस्था पर ध्यान ही नहीं दिया था। भारतीय जनता को अशिक्षित रखना उनके शासन को दीर्घायु देने में सहायक था। बद्रीप्रसाद जी परिवार के साथ जबलपुर में हनुमानताल क्षेत्र में रहते थे। फोटालाल प्राइमरी स्कूल शहर की नागरिक संस्था द्वारा सचांलित था। सुविधा के नाम का कोई साधन था ही नहीं। बालावस्था के बच्चों को पानी की प्यास लगती तो कहीं आस-पास जल नहीं था। इसी पाठशाला में बद्रीप्रसाद को आरम्भिक शिक्षा के लिए प्रवेश मिला। उनके परिवार में अमान नामक नौकर था वह बद्रीप्रसाद से बड़ा ही मोह रखता था। उसकी हर प्रकार से सहायता करता था। उन दिनों जबलपुर में शहरी वातावरण आने लगा था उसको अपने पिता जी से 2 (दो) आना जेब खर्च मिलता था। बद्रीप्रसाद को सिनेमा देखने का शौक बचपन से ही था। जेब खर्च से बचत करके सिनेमा हाल में फिल्म देखने का आनन्द लेते थे। यह रूचि आगे जाकर इस सीमा तक पहुँच गई कि एक बार उनको अपने प्रिय नायक राजकपूर के साथ फोटों खिंचवाने का अवसर मिला। यह फोटो आज भी उनके कार्यालय में सामने ही टंगा है।

प्राइमरी की शिक्षा पूरी करने के बाद मोडर्न स्कूल में दाखिला लिया। यह विद्यालय उनके घर से लगभग 3-4 मील दूर था। वहाँ वे प्राय: पैदल ही जाया करते थे पिताजी के प्रयोग में न होने पर तागाँ गाड़ी भी कभी छोड़ आती थी। जैसा प्राय: व्यापारी घरानों में होता है बालक को गणित और लिखना आने के बाद व्यापार में लगा दिया जाता था। बद्री प्रसाद जी ने मिडिल पाठशाला में शिक्षा के महत्व को समझ लिया था इसलिए मन लगाकर पूरा समय अध्ययन में लगाते थे। उन्होने 17 वर्ष की आयु में मैट्रिक की परीक्षा अच्छे अंकों में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। पिता जी आगे और पढाना नहीं चाहते थे परन्तु बद्रीप्रसाद ने उच्च शिक्षा प्राप्त कर लेने की ठानी हुई थी। ला. जीवनलाल जी उनको साथ लेकर बम्बई में सिंडहम कालेज में दाखिला कराने गये। तब अग्रेंजों का जमाना था उस कालेज में वैसा ही वातावरण था। बद्रीप्रसाद हर मापदण्ड से वहाँ प्रवेश प्राप्त लेने के हकदार थे। क्योंकि वे सादी वेशभूषा, कमीज और पजामें की पोशाक धारण किऐ हुए थे, उनको यह कहकर टाल दिया कि कालेज

में जबलपुर क्षेत्र का कोई कोटा नहीं है। जहाँ चाह वहाँ राह, इस स्थिति में भगवान भी साथ देता है। उनको बम्बई में ही एक जानकार मिल गये जो वही पर नौकरी करते थे। उन्होने बद्रीप्रसाद को बनारस में प्रवेश लेने की सलाह दी जिसमें वे उनकी पूरी सहायता करने में समर्थ है। बम्बई के स्थान पर उनकी उच्च शिक्षा बनारस में हुई। स्वतन्त्रता से पूर्व वाराणसी देश प्रेमी और देश भक्तों से भरा पड़ा था। यहाँ पर अध्ययन करने वाले युवक बिना विचार किये आन्दोलनों में शामिल हो जाते थे। चन्द्र शेखर आजाद का दूसरा उदाहरण शायद ही कोई इतिहास में हो। बद्रीप्रसाद जी भी उस समय के वातावरण से अछूते कब रह सकते थे। समाज में कई प्रकार की धाराऐं चलती है कुछ युवक प्रत्यक्षरूप में आन्दोलनों में भाग लेते थे तो कुछ पीछे रहकर काम करते थे। बद्रीप्रसाद में तो उच्च -शिक्षा प्राप्त करने की धुन सवार थी। उसका अर्थ यह नहीं था कि उन में देश प्रेम और देश भक्ति का अभाव था। उनका डा॰ सम्पूर्णानन्द, डॉ. राममनोहर लोहिया, पं॰ मदनमोहन मालवीय, डा॰ अमरनाथ झा, महर्षि पुरूषोतम टंडन और श्री प्रकाश जैसी विभूतियों से निकट के सम्पर्क थे जो शिक्षा सस्थाओं में स्वाधीनता का सन्देश देनें के लिए आते रहते थे। 1946 में महामना मालवीय का जब स्वर्गवास हो गया था तो सारे भारतवर्ष में देशवासी स्तब्ध रह गये थे। बनारस की शिक्षा सस्थाओ में विद्यार्थियों में गहरा अवसाद फैल गया था क्योंकि शिक्षण संस्थाओं की उन्हीं द्वारा स्थापना और पथ प्रर्दशन हुआ था। ला॰ बद्रीप्रसाद जी एक विद्यार्थी ही थे उन्होने महामना की अन्तयेष्टी में भाग लेकर उस महान् आत्मा को अपनी श्रद्धांजली दी। विद्यार्थी जीवन में देश प्रेम और देशभक्ति हर विद्यार्थी का पहला धर्म था, इस भावना का प्रचार वहाँ एक माध्यम के द्वारा किया जाता था। उसे कामर्स यूनियन नाम दिया हुआ था जो सांस्कृतिक कार्यक्रम पेश करती थी। इस कामर्स यूनियन के ला॰ बद्रीप्रसाद अग्रवाल उपाध्यक्ष थे। उन दिनों के वातावरण के अनुसार सांस्कृतिक कार्यक्रम देशभक्ति की भावना से ओतप्रोत होना स्वाभाविक था। युवकों में देश प्रेम का सन्देश पहुचें यह उद्देश्य होता था। इंटर मिडिएट की परीक्षा बहुत अच्छे अकों से उत्तीर्ण की ओर गोल्ड मैडल मिला। शिक्षा के धुनी अपनी मंजिल पर चलते रहे। फिर बी.कॉम., एम.ए.एल.एल.बी. और साहित्य रत्न की उपाधियाँ प्राप्त की।

पुरूषार्थी कभी समय की धारा के साथ नहीं बहता है। उसकी आदत उसके उल्ट चलने की होती है। वह परिवर्तित नहीं होता वह परिवर्तन लाने का प्रयास करता है। यही कहानी बद्री प्रसाद जी की विद्यार्थी जीवन और उसके पश्चात् देखने में आई। उन दिनों में जहाँ लड़कों को शिक्षा देने का प्रचलन कम था वहीं माता-पिता लड़कियों को विद्यालय भेजते ही नहीं थे। इस कारण से अधिकतर गृहणियाँ अशिक्षित होती थी। अब बद्रीप्रसाद जी के विवाह की तरफ परिवार और सम्बन्धियों का ध्यान गया। ला॰ जीवनलाल जी ने तो एक अच्छे परिवार की अशिक्षित लड़की से विवाह नियत करने का विचार बना लिया था परन्तु बद्री प्रसाद उस सम्बन्ध से सहमत नहीं हुए। सभी सम्बन्धित व्यक्तियों को उनकी पसन्द का पता चल गया था। उनके एक परिचित लखनऊ रहते थे जहाँ पर एक युवती अपनी बहन के यहाँ रहने के लिए आई थी। वह शिक्षित थी और बद्रीप्रसाद के लिए सभी प्रकार से योग्य थी। बात चली तो विवाह सम्बन्ध तय हो गया और 1950 में विवाह सम्पन्न हुआ। जिसका नाम स्वराज्यमणि था। जो ला॰ गणेशप्रसाद अग्रवाल और श्रीमति जग्गीदेवी, उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद नगर के निवासी की सुपुत्री थी।

जैसा पहले कहा है कि पुरूषार्थी कभी समय की धारा के साथ नहीं बहते और वह करते

है जो सभी नहीं करते । पुरूष वर्ग सदैव स्वाभिमानी, अपनी पत्नी की उन्नति की और ध्यान नहीं देता। पत्नी भी पुरूष की इच्छानुसार घरेलू कार्यों में उलझी रहकर अपना जीवन बिता देती है। बद्रीप्रसाद ने इस पुरूष भावना से ऊपर उठकर एक नया आदर्श पेश किया। स्वराज्य मणि को आग्रह करके उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया। जिससे वे आज एम॰ए॰ (हिन्दी भाषा) एम॰ ए॰ संगीत (कोविद) है। उन दोनों उपाधियों को उसने विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान प्राप्त करके प्राप्त किया। जबलपुर विश्व विद्यालय ने उनको स्वर्ण पदक प्रदान किया। स्वराज्य मणि यहाँ पर ही नही रूकी, न ही रोका गया। उन्होने 1968 में एक कठिन विषय लेकर मोहम्मद जायसी पर शोध ग्रन्थ लिखकर पी॰ एच॰डी॰ की उपाधि प्राप्त की।

अब यह शिक्षित दम्पति देश और समाज के लिए बहुमूल्य सम्पत्ति बनकर तैयार हो गये थे। ला॰ बद्रीप्रसाद जहाँ अर्थ-अर्जन के साथ समाज सेवा के रास्ते अपना रहे थे, डा॰ स्वराज्य मणि अग्रवाल ने उनके घरेलू उत्तरदायित्व को सम्भालते हुए कन्धे से कन्धा मिलाकर सहयोग दिया। ला॰ जीवनलाल ने दूरदृष्टि को बोध देते हुए जमीन का एक भाग 1954 में खरीद लिया था। बद्रीप्रसाद ने उस पर उस समय कृषि के उन्नत साधन, औजार, बीज, खाद आदि का प्रयोग कर लोगों को नई जानकारियाँ प्रदान करने का कार्य किया। ला॰ बद्रीप्रसाद अपने पिता का बड़ा सम्मान करते थे और उनकी हर सुविधा का ध्यान रखते थे। शनैः शनैः अर्थ-अर्जन और घरेलू जुम्मेदारी का दबाव उनसे कम करके अपने ऊपर लेते चले गये। अपने पिताजी का नाम अमर और स्थायी बनाने के उद्देश्य से 1958 में 'जीवन कोलोनी' की उनके नाम से नींव डाली। यह विधि की गति थी कि वे उस कालोनी को बसा हुआ और फलता फूलता देखने से वंचित रहे क्योकि 1960 में अचानक हृदय की गति रूक जाने ने उनका देहावसान हो गया। ला॰ बद्रीप्रसाद जी आज भी इस बात को स्मरण करके दुखी हो जाते है कि वे पिताजी से जाने से पूर्व बिदाई के दो शब्द बोलने का अवसर भी नही पा सके।

मै. अग्रवाल मोटरर्स जबलपुर नगर का प्रसिद्ध व्यापारिक स्थल है। उसको अपने पिता जी के जीवन-काल में ही स्वतन्त्र रूप से आरम्भ किया था। आज उनके पास कई प्रसिद्ध वाहन निर्माताओं की एजेसियाँ है। एक बड़ा वर्कशाप है। घरेलू प्रयोग में आने वाली टेली विजन, फ्रिज आदि का शोरूम है। यह सब काम उनकी देखरेख में उनके दो सुपुत्र शेखर अग्रवाल और सुनील अग्रवाल बड़ी जुम्मेदारी और आत्म विश्वास के साथ सम्भाल रहे हैं। जबलपुर नगर के आधे से अधिक भाग के सिटी केबल के तत्त्वाधान में मनोरंजन का साधन उपलब्ध करवाया हुआ है। उन सभी व्यवसायिक उपक्रमों से परिवार को अच्छी आय प्राप्त हो जाती है लगभग 150 कर्मचारी कार्यरत है।

समाज के अन्य वर्गो की यह धारणा रहती रही है कि वैश्य समाज अर्थ अर्जन के पीछे लगा रहता है। वह इतना स्वार्थी होता है कि समाज कल्याण के विषय में कुछ भी नही सोचता। ला॰ बद्रीप्रसाद अग्रवाल जी ने इस धारणा को न केवल झुठलाया, बल्कि उनके मुँह पर करारा तमाचा भी दिया। क्योंकि आज उसके परिवार का हर सदस्य प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से समाज की सेवा कर रहा है। वे लोग उस समय को क्यों भूल रहे है जब जबलपुर नगर में वैश्य समाज बंटा हुआ था। पड़ोस मे रहते हुए एक दूसरे को उँचा नीचा कहकर छोड़ दिया जाता था। ला॰ बद्री प्रसाद अपनी मजबूत आर्थिक स्थिति में जीवन को आनन्द पूर्वक व्यतीत कर सकते थे। पुरूषार्थी अपनी आदत से मजबूर होता है उसे तो कठिनाइयों से जूझने में मजा आता है 1970 में जबलपुर अग्रवाल सभा की स्थापना की। समाज के विभिन्न घटकों के

प्रतिनिधियों को कार्यकारिणी में शामिल किया। उस काल में जब कोई व्यक्ति स्वयं को अग्रवाल कहलाने में झिझकता था, बड़ी ही शान से अग्रसेन जंयती की शोभा यात्रा निकाल कर अन्य समाज के लोगों के सामने समाज की शान को बढाया। यह स्थानीय उपलब्धि थी। समाज के सदस्य कूपमन्डक ही न रहे, उनको नगर से बाहर के समाज के बारे में ज्ञान बढे, सम्पर्क बढे इस उद्देश्य से 1974 में मध्य प्रदेश अग्रवाल सभा'' की स्थापना की। 1976 में दिल्ली में राष्ट्र स्तर की ''अखिल भारतीय अग्रवाल सम्मेलन'' सस्था की स्थापना हुई। ला० बद्री प्रसाद को उसका उपाध्यक्ष बनाया गया। आजकल सम्पन्न समाज में यह फैशन हो गया है कि पदों को बटोर कर अपनी शान और रौब का प्रदर्शन किया जाये। ला० बद्रीप्रसाद व उनका परिवार भी ऐसा रवैया अपना सकता था। परन्तु पुरूषार्थी ऐसा नहीं करते। वे वर्षो समाज का अध्ययन करते रहे। उन्होने यह महसूस किया कि सम्पन्न वैश्यभाई तो अपनी पुत्री का विवाह अपने धन के बल पर आग्नी से करने में समर्थ होता है, परन्तु साधारण परिवार को अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। प्रथम तो सम्बन्ध मिलना कठिन होता है यदि वह मिल भी जाये तो माँग को पूरा करना दुर्लभ होता है। ला०बद्री प्रसाद को इस समस्या का समाधान परिचय-सम्मेलन के आयोजन में मिला। उन दिनों वहाँ उसके बारे में किसी को ज्ञान नहीं था और उसकी सफलता पर आंशका भी थी। लाला जी ने पूरी लग्न और परिश्रम से इसे सफल बनाया। इससे बहुत सारे विवाह सम्पन्न हुए। जिसमें अपव्यय, दिखावा नहीं था। उन कार्यो में उनकी पत्नी डा० स्वराज्यमणि अग्रवाल से पूर्ण सहयोग दिया। उन्होंने पति के साथ सामाजिक कार्य करते हुए स्वतन्त्र रूप से महिला कल्याण के लिए कदम उठाये।1954-55 में नगर में ''अग्रवाल महिला सगंठन'' की स्थापना की। प्रताड़ित और निराश्रित महिलाओं को स्वालम्बी होने और अपने पैरों पर खड़ा होने का मार्ग दिखाया। उनको कढ़ाई, सिलाई और अन्य दस्तकारियों में प्रशिक्षण की व्यवस्था की। डॉ० स्वराज्यमणि अग्रवाल यह सब अपने पति बद्रीप्रसाद की प्रेरणा और मार्गदर्शन से कर सकी। इस परिवार का देश का समस्त अग्रवाल परिवार ऋणी है। डॉ० स्वराज्यमणि अग्रवाल ने प्रमाणित और शोधपूर्ण अग्रवालों का इतिहास 'अग्रसेन, अग्रोहा अग्रवाल' शीर्षक से लिखा।

ला० जमनालाल बजाज अग्रवाल समाज की शीर्ष विभूति है। सर्वप्रथम इस समाज को राष्ट्र स्तर पर संगठित करने के उद्देश्य से ''अखिल भारतीय अग्रवाल महासभा'' की स्थापना की थी। वे संत रामदास की वाणी को ''बोले तैसा चाले। त्याची बंदीवी पाठती'' का स्मरण किया करते थे और उसका अनुसरण भी करते थे। ला० बद्री प्रसाद ने उन्ही के सिद्धान्तों का अनुसरण करते हुए अग्रवाल समाज के सामने अनुकरणीय आदर्श पेश किये। उन्होने अपनी सुपुत्री शैवालिनी नेवटिया का विवाह 1969 में मारवाड़ी समाज में बड़ी सादगी और बिना आडम्बर के चैनई नगर में किया। वहाँ पर उपलब्ध 'कल्याण मण्डपम्' में विवाह आयोजित था। यहाँ उनको विवाह में प्रयोग में आने वाले सभी सामान आसानी से मिल गये। यहाँ की व्यवस्था को देखकर सभी बहुत प्रभावित हुए। उसी ढंग से ला०बद्री प्रसाद ने जबलपुर में एक स्थल निर्माण करने का संकल्प लिया। उसके लिए 84,000 वर्ग फुट जमीन रियायती दरों पर शासन से लेने में सफल हुए। चैनई की तर्ज पर उसका नाम ''श्री अग्रसेन कल्याण मंडपम्'' रखा। लाला जी को इस कार्य को पूरा करने में कई मीठे और कड़वे अनुभव मिले। बहुत से श्रेय के भूखे व्यक्तियों ने अड़चने पैदा की जिसके कारण एक बार उनको पद से हट जाना पड़ा। यह वास्तविकता है कि हर व्यक्ति समाज के काम में समय और अन्य साधनों का योगदान नही दे पाता। उनके पुत्र श्री शेखर अग्रवाल इस कार्य पर बराबर नजर रखे हुए थे। जब

दस वर्षो के अधिक समय में भी निर्माण नहीं के बराबर रहा तो उन्होने अपने पिता जी को आग्रह करके पुन: कार्य को करने का निवेदन किया। ला० बद्रीप्रसाद ने जब पुन: वह कार्य हाथ में लिया तो उसे पूरा किया। उस भवन पर 70 लाख रूपये से अधिक व्यय हुआ और लोगों के विवाह और समाज के सभी प्रकार के प्रयोग में आने लगा। इस भवन को मध्य प्रदेश के कितने ही राजनीतिज्ञों, पत्रकारों और नेताओं को देखने का अवसर मिला। इसे देखकर सभी ने उसकी भूरि-भूरी प्रशंसा की और उसे जबलपुर नगर की शान बताया।

किंमवदन्ति है कि माँ लक्ष्मी और सरस्वती भगवान विष्णु की प्रिया हैं। इस कारण वे दोनों साथ नहीं रहती। जबलपुर नगर की जीवन कालोनी के बलदेवबाग में उन दोनों का संगम है। माँ लक्ष्मी किस प्रकार परिवार पर प्रसन्न है उसका विवरण पूर्व में दिया हुआ है। माँ सरस्वती की पूजा अर्चना सारा परिवार करता है। ला. बद्रीप्रसाद जी शिक्षा को कितना महत्व देते थे यह आरम्भ में दिया है। उनके दोनो पुत्रों शेखर अग्रवाल और सुनिल अग्रवाल ने राजस्थान के विश्वविख्यात पिलानी में स्थित इंजिनियरिंग कालेज से उच्च शिक्षा प्राप्त की जो उनके तकनीकी से परिपूर्ण व्यापार में काम आती है। उनकी पुत्र वधुऐं नन्दिनी अग्रवाल और पूनम अग्रवाल भी शिक्षित हैं। शिक्षा का दान सर्वोपरि माना गया है ये दोनों महिलाऐं विद्या दान में लगी हैं। कुछ वर्ष ही पूर्व उन्होने कुछ अपने ही कर्मचारियों के बालकों को लेकर अध्यापन का कार्य आरम्भ किया था उनकी लग्न और परिश्रम का आज यह प्रतिफल है कि पाठशाला का लगभग 20 कमरों का भवन है और सैकड़ों विद्यार्थी लाभ उठा रहे हैं। यहाँ ला० बद्रीप्रसाद और डॉ० स्वाराज्य मणि अग्रवाल से प्राप्त सुसस्कार स्पष्ट देखे जा सकते हैं। बड़ी पुत्र वधु नन्दिनी संरक्षक है तो छोटी पुत्रवधु पुनम स्कूल की प्रिसिंपल का पद सम्भाल कर परस्पर सहयोग से संस्था को चला रही हैं।

जिस व्यक्ति की कथनी और करनी बराबर होती है उसका हर व्यक्ति हर संस्थान सम्मान करती है, उस व्यक्ति से केवल सम्बन्धित होने में अपना गौरव और गर्व मानती है। यह बात ला० बद्रीप्रसाद जी अग्रवाल के कार्यलय में एक नजर भर देखने से सिद्ध हो जाती है। उनके कार्यालय में अनेक संस्थाओं द्वारा प्रदान किये हुए समृति चिन्ह, प्रशस्ति पत्र, ट्रोफी आदि की एक गैलेरी है। वे अनेक संस्थाओं के अध्यक्ष, सदस्य हैं। जिनमें रोटरी कलब, कोमर्शियल चेम्बर, जीवनकुटी, गीताधाम, लायंस क्लब और अन्य विद्यालयों के अतिरिक्त शारदा संगीत महाविद्यालय आदि प्रमुख है। समाज सेवा चिरस्थाई और निरन्तर रहे उसके लिए स्थाई व्यवस्था करना आवश्यक था। इस उद्देश्य से परिवार ने 'बद्री प्रसाद एजूकेशनल सोसायटी' और 'स्वराज्यमणी जनकल्याण ट्रस्ट' स्थापित की है। पाठक उन संस्थाओ के नामों से अनुमान लगा सकेंगें कि अनुग्रहित परिवार ने ही अपने माता-पिता की स्मृति को चिरस्थाई करने के लिए उनके जीवन काल में ही यह अद्वितिय कदम उठाया है। ला०बद्री प्रसाद जी अग्रवाल 75 (पचहत्तर) वर्ष की आयु पार कर चुके है। इसी परिवार ने उनके समुचित सम्मान देने के लिए 2002 ई० में अमृत महोत्सव मनाया था। जो विभूति देश, समाज और जन-साधारण के सेवा के लिए हमेशा तत्पर रहती है, परमेश्वर से प्रार्थना है कि उनको दीर्घायु प्रदान करें।

▲▲▲

बालक और बालिकाओं के लिए उपयोगी सामाजिक पुस्तकों का परिचय

आपको यह विदित होगा कि वैश्य अग्रवाल समाज भारत देश की कुल जनसंख्या का 12-16 प्रतिशत है जिनमें लगभग 4 प्रतिशत अग्रवाल समाज के व्यक्ति हैं। इस बड़ी जनसंख्या में बालक और बालिकाओं की संख्या बहुत महत्वपूर्ण है और वे समाज की भावी पीढ़ी हैं। किसी भी समाज का साहित्य उसका दर्पण होता है। वह नई पीढ़ी को संस्कार और भावी आदर्श नागरिक बनने की प्रेरणा देता है। अग्रवाल समाज और उसकी विभूतियों पर जो लिखा गया, वह ऐसा तितर-बितर और बिखरा हुआ था कि बालक/बालिकाओं के माता-पिता तथा संरक्षक उनको क्या सामाजिक साहित्य अध्ययन के लिए दें, इसकी उनको जानकारी नहीं होती थी। फिर वैसा साहित्य / पुस्तक लिखी भी तो नहीं गई थी। अब वह कमी समाप्त हो गई है। ऐसी पुस्तकों का परिचय नीचे दिया जा रहा है–

1. **बाल अग्र-मंजूषा भाग-1 : लेखक सूबेसिंह गुप्ता मूल्य 70/-**
2. **बाल अग्र-मंजूषा भाग-2 : लेखक सूबेसिंह गुप्ता मूल्य 90/-**
3. **बाल अग्र-मंजूषा भाग-3 : लेखक सूबेसिंह गुप्ता मूल्य 90/-**
4. **राष्ट्र की वैश्य विभूतियाँ : ले. सूबेसिंह गुप्ता, चन्द्रमोहन गुप्ता मू. 100/-**
5. **अग्रसेन और अग्र-भागवत : लेखक सूबे सिंह गुप्ता मूल्य 30/-**

श्री एस.एस. गुप्ता को इस छटी पुस्तक प्रकाशन पर हार्दिक शुभकामनाएं और बधाई देता हूँ। मेरा गुप्ता जी से परिचय जयश्री अग्रसेन अरबन श्री.एण्ड क्रे. सोसायटी के माध्यम से हुआ जिसके वे प्रवर्तक और अपने पैरों पर खड़ा करने वाले व्यक्ति हैं। जिसकी प्रबन्ध समिति का इन दिनों मैं सदस्य भी हूँ।

राजेन्द्र मित्तल
मंत्री : श्री अग्रसेन इन्टरनेशनल अस्पताल, रोहिणी
मंत्री : अखिल भारतीय युवा अग्रवाल सम्मेलन
मंत्री : इन्द्रप्रस्थ विश्व हिन्दू परिषद, जिला सरस्वती विहार

Agent & Member, ZM Club
Life Insurance Corporation of India

नीलकण्ठ प्रोपर्टीज
318, कोहाट इन्कलेव, पीतमपुरा, दिल्ली-110034
निवास : 25, भारत अपार्टमेंट, सैक्टर-13, रोहिणी, दिल्ली-85
दूरभाष : 27567728, मोबाईल : 9811011444

भाई सुबेसिंह जी की पाँचों पुस्तकों का अध्ययन किया। उनका यह सामाजिक कार्य सराहनीय है। जिसके लिए हम उनको शुभकामनाएँ और बधाई देते हैं।

Ramesh Aggarwal
9310203570

Manish Aggarwal
9310103570
9810103570

MAHARAJA AGARSEN PROPERTIES

Authorised Agents :
ansals
Parsvanth
OMAXE Turning dreams into reality
tdi greens
tdi City
SUNCITY PROJECTS

Deals in :
Pitam Pura, Rohini, Bawana, Narela, Kundli & Sonipat

74, Shakti Vihar, Pitam Pura, Delhi-110034
Phone : 65170289 Fax : 011-42641083

लेखक का परिचय

सुबेसिंह गुप्ता

12 अक्टूबर 2007 को महाराजा अग्रसेन पार्क कश्मीरी गेट में अग्रसेन जयन्ती के पावन अवसर पर पधारे संसद में विपक्ष के नेता माननीय लालकृष्ण आडवाणी जी महाराजा अग्रसेन और अग्र भागवत् पुस्तक का विमोचन करते हुए। उनकी बाईं तरफ सर्वश्री डॉ. विष्णु चन्द्र गुप्ता चन्द्रमोहन गुप्ता, लेखक सुबेसिंह गुप्ता तथा दाईं तरफ सर्वश्री अनिल गोयल एवं अनिल गुप्ता

राष्ट्र के वैश्य रत्न

भाग–1

122 A

सुबेसिंह गुप्ता